जुलाई-सितंबर अंक : 96 2018
July-September ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-24/2018 Impact Factor : 4.25

विधि भारती परिषद्
बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
फ़ोन : 011-27491549, 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

'महिला विधि भारती' पत्रिका

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com

Website : www.vidhibharatiparishad.in

अंक : अंक 96 (जुलाई-सितंबर, 2018)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

बोर्ड ऑफ रेफरीज एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर : पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय, पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली।
6. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
7. श्री हरनाम दास टक्कर : पूर्व निदेशक, लोक सभा सचिवालय, नई दिल्ली
7. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह : संस्थापक वाइस चांसलर, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी एवं न्यायिक अकादमी, असम

प्रदेश प्रभारी

1. प्रो. देवदत्त शर्मा (उत्तर प्रदेश) 09236003140
2. प्रो. (डॉ.) सुरेंद्र यादव (राजस्थान) 09414442947

परिषद की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रवेश सक्सेना (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. एच. बालसुब्रह्मण्यम् (सदस्य)
15. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
16. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

अंक 96 में

1.	उच्चतम न्यायालय का समलैंगिकता पर ऐतिहासिक निर्णय / **संपादकीय**	--	207
2.	शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न एवं वैधानिक प्रावधान / **डॉ. विभा त्रिपाठी**	--	212
3.	सेरोगेसी : एक ज्वलंत मुद्दा / **डॉ. सूफिया अहमद**	--	219
4.	मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 : एक लाभकारी एवं क्रांतिकारी क़ानून / **सन्तोष खन्ना**	--	222
5.	भारत में महिला सुरक्षा का प्रश्न एवं क़ानून / **डॉ. श्रीमती राजेश जैन**	--	231
	कविता		
6.	ये मेरा देश है प्यारे; सूरज से बहुत पहले (दो गीत) / **बी.एल. गौड़**	--	238
7.	चीख चुलबुली (हिंदी कविता) / **प्रो. सुरिंदर मोहन धवन**	--	239
8.	'भारत रत्न' पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को जन-जन का कोटिशः नमन (श्रद्धांजलि) / **डॉ. उषादेव**	--	240
9.	धारा 497 हटाने का अर्थ...	--	243
10.	बाँध लूँ अनन्त को (पुस्तक समीक्षा) / **डॉ. परवेश सक्सेना**	--	244
11.	विधि क्षेत्र की हिंदी-शब्दावली की विकास यात्रा / **डॉ. हरीश कुमार सेठी**	--	245
12.	स्कूलों में बाल यौन शोषण : एक गंभीर समस्या / **डॉ. कालिन्द्री**	--	253
13.	Juvenile Offenders in India : An Analysis / **Prof. (Dr.) Jay Prakash Yadav**	--	257
14.	हिंदी (हिंदी कविता) / **इकबाल अकरम वारसी**	--	265
15.	झारखंड के जनजाति में खेती-बाड़ी के विकास में कृषि विज्ञान केंद्र की भूमिका / **डॉ. अनिल कुमार यादव एवं मार्शल बिरूआ**	--	266
16.	स्वप्न या सच? / **सन्तोष खन्ना**	--	272
17.	Right to Health of Women : A Case Study of Tubal Ligation in India / **Dr. Pramod Malik**	--	281
18.	सन्तोष खन्ना का 'सेतु के आर-पार' नाटक : अनुवाद विधा का अनोखा नाट्यकरण (पुस्तक समीक्षा) / **डॉ. परवेश सक्सेना**	--	285
19.	मीडिया का वर्तमान स्वरूप एवं आचार संहिता / **डॉ. निशा केवलिया शर्मा**	--	290

लेखक मंडल

डॉ. विभा त्रिपाठी : प्रोफेसर, लॉ फैकल्टी, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी

डॉ. सूफिया अहमद : सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, स्कूल ऑफ लीगल स्टडीज़, बाबा साहब भीमराव अंबेडकर सेंट्रल यूनिवर्सिटी, लखनऊ-226025

सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती', त्रैमासिक पत्रिका

बी.एल. गौड़ : संपादक, गौड़ टाइम्स, गाजियाबाद

प्रो. सुरिंदर मोहन धवन : पूर्व प्रोफेसर (अंग्रेजी) चंडीगढ़

डॉ. श्रीमती राजेश जैन : प्रोफेसर एवं ओ.एस.डी. उच्च शिक्षा, सागर संभाग, सागर (मध्य प्रदेश), E-mail : rkj1659@gmail.com

डॉ. उषा देव : सेवानिवृत्त प्रोफेसर, माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

इकबाल अकरम वारसी : खीरी टाउन

डॉ. हरीश कुमार सेठी : असिस्टेंट प्रोफेसर, अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण विद्यापीठ, ब्लॉक 15-सी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मैदान गढ़ी, नई दिल्ली-110068

डॉ. कालिन्द्री : असिस्टेंट प्रोफेसर, विधि विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, फ्लैट नं. 4, टीचर्स फ्लैट, लखनऊ विश्वविद्यालय, नया कैम्पस, जानकीपुरम, लखनऊ-2260031

प्रो. (डॉ.) जे.पी. यादव : प्रिंसीपल-डायरेक्टर, यूआईएलएस, चंडीगढ़ विश्वविद्यालय, मोहाली, पंजाब

डॉ. अनिल कुमार यादव : निदेशक व मार्शल बिरूआ सहायक निदेशक, राष्ट्रीय श्रम अर्थशास्त्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान में कार्यरत हैं।

डॉ. प्रमोद मलिक : सहायक प्रोफेसर, बी.पी.एस. वूमैन यूनिवर्सिटी, सोनीपत

डॉ. परवेश सक्सेना : पूर्व प्रोफेसर, डॉ. जाकिर हुसैन कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. निशा केवलिया शर्मा : प्रधानाचार्या, मोतीलाल नेहरू लॉ कॉलेज, खंडावा
ई-मेल : nishakevaliya44@gmail.com

संपादकीय

उच्चतम न्यायालय का समलैंगिकता पर ऐतिहासिक निर्णय

भारत के उच्चतम न्यायालय की पाँच-सदस्यीय संवैधानिक पीठ ने 6 सितंबर, 2018 को भारतीय दंड संहिता की धारा 377 पर एक ऐतिहासिक निर्णय देते हुए समलैंगिकता के बारे में कहा कि यह अपराध नहीं है। भारतीय दंड संहिता एक बहुत ही पुराना क़ानून है। अंग्रेज़ों ने भारत में 1861 में इसे बना कर लागू किया था। इस विक्टोरियाकालीन क़ानून में धारा 377 के अंतर्गत समलैंगिक संबंध को अपराध ठहराया गया था। इसी धारा को उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री दीपक मिश्रा ने फैसला सुनाते हुए कहा कि धारा 377 असंवैधानिक है और समलैंगिकता अब अपराध नहीं है। समलैंगिकों को सम्मान के साथ जीने का पूरा अधिकार है। न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् गेटे को उद्धृत करते हुए कहा कि ''मैं जो हूँ, वही हूँ, मुझे वैसा ही स्वीकार किया जाए।''

सबसे पहले हम जान लें धारा 377 में क्या कहा गया है। इसमें कहा गया है कि यदि दो व्यस्क व्यक्ति आपसी सहमति से अप्राकृतिक संबंध बनाते हैं और दोषी करार दिए जाते हैं तो उनको 10 साल की सज़ा से लेकर उम्र क़ैद तक की सज़ा हो सकती है तथा साथ ही उसे जुर्माना भी किया जा सकता है। हर अपराध ग़ैर-जमानती और संज्ञेय अपराध है इस पर प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट ही सुनवाई कर सकता है।''

यह धारा 1862 से भारत में लागू है और डेढ़ सौ वर्ष से भी अधिक समय से लागू क़ानून की इस धारा के अंतर्गत अब तक न जाने कितने व्यक्तियों को इसके उल्लंघन पर दंड दिया गया होगा और न जाने कितने ही लोगों को बदनामी या गुमनामी के अँधेरों में नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ा होगा। अब इसी धारा को उच्चतम न्यायालय ने असंवैधानिक और ग़ैर-क़ानूनी घोषित कर दिया है।

वास्तव में इस धारा को निरस्त करने की माँग बहुत समय से उठ रही थी परंतु भारत में रूढ़िवादी सोच के कारण यह अभी तक बना हुआ था। वैसे वास्तव में सेक्स वर्करों के लिए काम करने वाली एक संस्था नाज़ फाउंडेशन ने दिल्ली उच्चतम न्यायालय में धारा 377 की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी थी कि दो व्यस्क व्यक्तियों में सहमति से बने यौन संबंधों को इस धारा के दायरे से बाहर रखा जाए, ऐसे संबंधों

को अपराध न माना जाए।

इसी मामले में 2 जुलाई, 2009 को दिल्ली उच्च न्यायालय ने फैसला दिया कि दो वयस्कों के बीच सहमति से बने यौन संबंध अपराध नहीं हैं, इस बारे में सभी को समानता का अधिकार प्राप्त है। इसी फैसले पर अपील में उच्चतम न्यायालय ने 11 दिसंबर, 2011 को इस फैसले को पलट दिया। उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जब तक धारा 377 रहेगी तब तक समलैंगिक संबंध वैध नहीं ठहराए जा सकते हैं। इसलिए इस धारा को संवैधानिक क़रार दिया जाता है।

ध्यातव्य है कि उच्च न्यायालय में नाज़ फाउंडेशन की याचिका की सुनवाई के दौरान यू.पी.ए. सरकार ने शपथ-पत्र फाइल कर कहा था कि धारा 377 को बनाए रखा जाए। तब विपक्ष में बी.जे.पी. ने समलैंगिकता को क़ानूनी मान्यता देने का विरोध करते हुए अपसंस्कृति और बीमारी के तौर पर प्रचारित किया था। परंतु अब उच्चतम न्यायालय में बी.जे.पी. की सरकार ने कोई लिखित जवाब फाइल नहीं किया बल्कि इसे उच्चतम न्यायालय के विवेक पर छोड़ दिया था जिसकी न्यायालय ने आलोचना भी की है।

समलैंगिकता क्या है?

समलैंगिकता का अर्थ किसी व्यक्ति का समान लिंग के प्रति यौन और रोमांसपूर्ण रूप से आकर्षित होना माना जाता है। किसी पुरुष का पुरुष के प्रति यौन आकर्षण समलिंगी या गे कहलाता है। महिला का महिला के प्रति यौन आकर्षण लैस्बियन कहलाता है। जो लोग महिला और पुरुष दोनों के प्रति आकर्षित होते हैं उन्हें उभयलिंगी कहा जाता है। अंग्रेज़ी में इसे एल.जी.बी.टी. (LGBT) समुदाय कहा जाता है। इसमें ट्रांस जेंडर अर्थात् किन्नर भी शामिल होते हैं। प्रायः हर धर्म में कुछ अपवादों को छोड़ कर अप्राकृतिक यौन संबंधों को पाप या अनैतिक माना जाता है। हिंदू धर्म में प्राचीन साहित्य में किन्नर लोगों का तिरस्कार नहीं किया जाता था। शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप हमेशा पूजनीय रहा। हिंदू धर्म के संबंध में ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं जिससे इस प्रकार के संबंधों को अनैतिक या पाप नहीं समझा जाता था। ऐसे संबंधों को अप्राकृतिक तो नहीं माना जाता था। **नवतेज सिंह जौहर एवं अन्य बनाम भारत संघ** के केस में कुछ लोग समलैंगिक संबंधों को बीमारी भी मानते हैं। परंतु अब सब धर्मों में और चिकित्सा विज्ञान में भी समलैंगिकता के बारे में सोच बदल रही है, तभी तो धीरे-धीरे अनेक देशों में समलैंगिक संबंधों को मान्यता मिलती जा रही है और भारत भी अब कुछ सीमा तक इन देशों में सम्मिलित हो गया है।

उच्चतम न्यायालय ने भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा ने इस

संबंध में अपनी ओर से अपने निर्णय में व्यापक शोध करते हुए तथा इस विषय पर अनेक न्यायिक निर्णयों का गहरा अध्ययन करते हुए अपने निर्णय के पैरा 46 में कहा है :

''अमेरिकन साइकोलॉज़िकल एसोसिएशन ने जुलाई, 1994 में अपने एक अध्ययन में समलैंगिकता के बारे में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं :

समलैंगिकता के संबंध में शोध से यह बात सपष्ट हो गई है कि समलैंगिकता न तो कोई मानसिक बीमारी है और न ही नैतिक भ्रष्टाचार है। हमारे यहाँ कुछ अल्पसंख्यक ऐसे लोग हैं जो अपना प्रेम और यौन की अभिव्यक्ति इस तरह से करते हैं। समलैंगिक पुरुषों या महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य के अनेक अध्ययन किए जा चुके हैं जिससे पता चलता है कि समलैंगिक महिलाएँ और पुरुषों का मानसिक स्वास्थ्य विषम लिंगी व्यक्तियों के समान ही होता है। समलैंगिकता चुनी नहीं जाती बल्कि वह जन्म से ही होती है। अपितु जन्म लेने से पहले ही शरीर और मानस का हिस्सा बन जाती है। विश्व में लगभग दस प्रतिशत लोग समलैंगिक होते हैं। इस प्रतिशत में न तो कभी वृद्धि हुई है और न ही कमी आई है। यद्यपि विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों में मूल्य बदलते रहते हैं फिर भी इनकी संख्या लगभग दस प्रतिशत ही रहती है। अनुसंधानों से यह भी पता चलता है कि समलैंगिकों का उपचार करने से भी उनमें परिवर्तन नहीं आता है।''

अपनी बात पर बल देने के लिए न्यायमूर्ति श्री दीपक मिश्रा अपने निर्णय के अगले ही पैरे में लियोनार्ड सॉक्स को उद्धृत करते हुए कहते हैं :

''शारीरिक विज्ञान के अनुसार, एक समलैंगिक और विषम समलैंगिक व्यक्ति में अंतर वैसा ही है जैसे कि दाँए हाथ और बाँए हाथ प्रयोग करने वाले के बीच होता है। जैसे बाँया हाथ प्रयोग करने वाला व्यक्ति दाँया हाथ प्रयोग करने वाला नहीं बन सकता, उसी प्रकार समलैंगिक व्यक्ति विषमलिंगी नहीं बन या बनाया जा सकता है। ...कुछ बच्चे जन्म से ही बाँया हाथ प्रयोग करने वाले होते हैं। उसी प्रकार, कुछ व्यक्ति जन्म से ही समलैंगिक होते हैं।''

उपरोक्त से स्पष्ट है कि जब कोई अपनी लैंगिकता चुन नहीं सकता क्योंकि वह जन्मजात होती है, न तो वह बदल सकती है, न ही उसका उपचार हो सकता है, ऐसे में इन व्यक्तियों की समलैंगिकता को अपराध मानना बिल्कुल भी उपयुक्त नहीं है और इस कारण उन्हें उनके गरिमापूर्ण जीवन से वंचित करना समाज के लिए न तो नैतिकता के दायरे में आता है और न ही प्राकृतिक न्याय के दायरे में। जब ऐसे लोगों के कुछ बस में ही नहीं है तो आज हम कह सकते हैं कि इस बिरादरी के

साथ हमेशा अन्याय ही होता रहा, तभी तो अभी हाल में उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश के पद पर पहुँची न्यायमूर्ति इंदू मल्होत्रा, जो कि पाँच-सदस्यीय इस संवैधानिक पीठ की एकमात्र महिला न्यायाधीश थीं, ने अपने न्याय निर्णय में कहा है कि ''यौनिकता का स्वरूप जन्मजात होता है उसे बदला नहीं जा सकता। समलैंगिकता मानवीय यौनिकता का एक प्राकृतिक रूप है इसमें अप्राकृतिक कुछ भी नहीं है इसलिए सदियों के इतिहास को इन व्यक्तियों और उनके परिवारों से क्षमा माँगनी चाहिए कि ऐसे लोगों को सदियों तक बदनामी और गुमनामी का जीवन जीना पड़ा और उन्हें इतनी सदियों के विलंब के बाद राहत दी जा रही है।''

भारत का संविधान एक जीवंत दस्तावेज़ है; वह केवल शब्दों का पुलिंदा नहीं है बल्कि उसके हर प्रावधान में एक रचनात्मक आत्मा का वास है। भारत में समता, समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और सभी प्रकार की स्वतंत्रता भारत के नागरिकों को प्रदान की गई है। ऐसे में अगर कुछ लोग इन अधिकारों से वंचित रहते हैं जिन पर समाज ने अपने मूल्य थोपे हुए थे यद्यपि ऐसे वर्गों का अपना कोई कसूर नहीं था, तो ऐसी सामाजिक नैतिकता की तुलना में संवैधानिक नैतिकता को ही स्वीकार किया जाएगा। इसी बात पर न्यायाधीशों ने अपने निर्णय पर बार-बार बल देते हुए कहा कि यह सदियों पुराना क़ानून (धारा 377) बहुसंख्यकों के हाथ में एक ऐसा हथियार था जिसके बल पर इन अभागे लोगों का हमेशा शोषण किया गया, उन्हें सताया गया, उन्हें उनके अधिकारों से वंचित किया गया। ऐसी धारा संविधान की कसौटी पर कहीं नहीं टिकती। इसलिए समलैंगिक यौनिकता को सामाजिक नैतिकता, परंपराओं ओर उपदेशों के आईने में नहीं देखा जा सकता। इसलिए संवैधानिक नैतिकता की सामाजिक नैतिकता के कारण बलि नहीं दी जा सकती है।

उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने भारत के संविधान की कसौटी पर सदियों से उत्पीड़ित इन लोगों को मौलिक अधिकार देकर उनका हौसला बढ़ा दिया है। परंतु वास्तविकता के कठोर धरातल पर उन्हें गरिमा के साथ जीने का अधिकार मिल पाएगा? कुछ हलकों में कहा जा रहा है कि समलैंगिकता का अधिकार तो ठीक है किंतु ऐसे लोगों को परस्पर विवाह करने आदि का अधिकार नहीं है और न ही उन्हें यह अधिकार दिया जाए। इसका एक अर्थ यह भी है समलैंगिक वर्ग की संपूर्ण न्याय प्राप्त करने की लड़ाई अभी अधूरी है; विरोध करने वालों का कहना है कि ऐसे विवाह में बच्चे पैदा नहीं हो सकते; किंतु ऐसे लोग निःसंतान दंपतियों की तरह बच्चे गोद तो ले ही सकते हैं। क़ानून को फिर उनकी सहायता के लिए आगे आना होगा। पहले की स्थिति में ऐसे लोगों को चिकित्सा सेवा नहीं मिल पाती थी कई लोग डिप्रेशन का

शिकार रहते थे या फिर बदनामी के डर से आत्महत्या तक कर लेते थे। इस संबंध में यहीं इस बात का उल्लेख करना ज़रूरी है क्योंकि इस बात का उल्लेख उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय में भी किया गया है कि भारत की संसद ने मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 में कहा है कि समलैंगिकों को भी मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिकित्सा अधिकार भी समान रूप से प्राप्त होगा।

सरकार को उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश दिया है कि इस न्यायिक निर्णय के बारे में समाज में चेतना लाई जाए। क्योंकि अधिकांश लोगों के मन में इन लोगों को लेकर परंपरागत छवि बनी हुई है; उस छवि को तोड़ना इतना सुगम भी नहीं है; इस संबंध में समाज में बदलाव लाने के लिए अभी बहुत कुछ करना शेष है। न्यायाधीश न्यायमूर्ति रोहिंग्टन फली नरीमन ने अपने निर्णय में कहा है कि सरकार को अपने शासकीय तंत्र को विशेष रूप से पुलिस को इस संबंध में संवेदनशील बनाना होगा।

उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों के दौरान जिन मामलों का विश्लेषण किया है उनके आधार पर उनका कहना है कि भारतीय दंड संहिता की धारा जहाँ तक दो वयस्कों के बीच सहमति से संबंधों को अपराधी ठहराती है, उस सीमा तक उसे संवैधानिक नहीं माना जा सकता है। परंतु यदि कोई पुरुष या महिला किसी पशु के साथ यौन संबंध बनाते हैं तो उसे धारा 377 के अंतर्गत अपराध ही माना जाएगा। उस सीमा तक धारा 377 संवैधानिक रूप से वैध मानी जाएगी। इसके अलावा, अगर दो व्यक्तियों के बीच, उनकी सहमति के बिना समलैंगिक संबंध बनाए जाएँगे, वह भी अपराध माना जाएगा।

नवतेज सिंह जौहर के इस मामले में दिए गए उच्चतम न्यायालय का निर्णय भारतीयों की सोच में परिवर्तन लाएगा ही, वह देश जहाँ अभी समलैंगिकों को अधिकार नहीं मिले हैं, को भी प्रभावित अवश्य करेगा। जब विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र देश ने सदियों से उपेक्षित इन लोगों को संवैधानिक अधिकार प्रदान कर दिए हैं तो अधिकारों की यह बयार अन्य देशों में भी अवश्य बहेगी और वहाँ भी देर-सवेर ऐसे उपेक्षित लोगों को अधिकार अवश्य मिलेंगे।

❑

डॉ. विभा त्रिपाठी

शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न एवं वैधानिक प्रावधान

आज शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न की समस्या अत्यंत गंभीर हो चुकी है और इस गंभीर समस्या के साथ वैचारिक न्याय करने के लिए इसे कुछ भागों में बाँटकर अध्ययन करना उचित होगा। मसलन लैंगिक उत्पीड़न की अवधारणात्मक उत्पत्ति एवं विस्तार, शैक्षणिक संस्थाओं के संदर्भ में विषय की गंभीरता और संवैधानिक तथा संविधायी प्रावधानों की चर्चा एवं मूल्यांकन एवं एक सभ्य समाज के संभ्रांत नागरिक के रूप में हमारी आपकी सामूहिक ज़िम्मेदारी को निभाने की आवश्यकता।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

यों तो यह कहा जा सकता है कि लैंगिक उत्पीड़न की समस्या उतनी ही प्राचीन है जितनी पुरानी यह सृष्टि है और नर, नारी का सर्जन। परंतु जब तक किसी समस्या का नामकरण नहीं हो जाता उस पर चर्चा भी नहीं हो पाती। यह 1970 का दशक था जब प्रमुख स्त्रीवादी विचारकों ने इस समस्या को संबोधित करने के लिए उपयुक्त शब्द ढूँढने की कोशिश की थी। विभिन्न जगहों पर जो जानकारी उपलब्ध है उसके अनुसार इसकी उत्पत्ति कॉरनेल विश्वविद्यालय में महिला एवं कार्य विषय के पाठ्यक्रम की चर्चा के दौरान हुई। दूसरा मत कहता है कि अमेरिका की सर्किट कोर्ट में 'बारनेस बनाम कोस्टल' के वाद में कहा गया कि जब कार्यरत् महिला के विरुद्ध कोई लैंगिक टिप्पणी इस आशय के साथ की जाती है कि उसे निकाला भी जा सकता है तो उसे लैंगिक उत्पीड़न कहते हैं। कैथरीन मैकिनॉन जो इस केस की अटार्नी थीं उन्होंने एक पुस्तक में लिखा कि लैंगिक उत्पीड़न चाहे इसमें निकाले जाने की धमकी हो या नहीं नागरिक अधिकार अधिनियम, 1964 के तहत लिंग के आधार पर विभेद कारित करता है। इसी अधिनियम में सर्वप्रथम लैंगिक उत्पीड़न को दो भागों में बाँटा गया -- पहला Quid Pro Quo Harassment यानि

यदि आपने यौन संबंधी अनुरोध को मना किया तो या तो आपकी प्रोन्नति रोक दी जाएगी या आपका निलंबन कर दिया जाएगा। दूसरा hostile environment harassment -- यानी उत्पीड़नकारी ऐसी परिस्थितियों जो अपमानकारी होती हैं और विभेदकारी होती हैं। कुछ अन्य जगहों पर यह उल्लिखित है कि मेरी रोवे की पुस्तक 'In Saturn's Right' में इसकी चर्चा सर्वप्रथम की गई तो सुसेन ब्राउन मिलर कहती हैं कि 1975 में इस शब्द की उत्पत्ति हुई।

इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से यह स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिमी देशों की स्त्रीवादी विचारकों ने इस समस्या की पहचान कर चर्चा प्रारंभ की लेकिन समस्या का विस्तार तो सार्वभौमिक है। चाहे Civil Law Countries हों या Common Law Countries हों या Middle East के देश हों -- एशिया, अफ्रीका, यूरोप, हर जगह यह समस्या व्याप्त है और इसका प्रमाण इस बाबत बनाए गए अधिनियमों से होता है। समाज की सांस्कृतिक पूर्वाग्रह पृष्ठभूमि, गहरी पितृसत्तात्मक पूर्वाग्रहपूर्व सोच एवं सामाजिक मनोवैज्ञानिक मानदंडों ने सदैव ही इस समस्या की जड़ों को मजबूत किया है -- हम आजतक उस फ्रायडवादी अवधारणा से उबर नहीं पाए हैं जिसने कभी कहा था कि 'No woman should be taken in the manner in which she wants to be taken.' यानी यदि वह न कहती है तो मतलब 'शायद'; यदि शायद कहती है तो मतलब 'हाँ' और यदि वह हाँ कहती है तो मतलब वह Easy virtue की महिला है। इस पृष्ठभूमि में हमें चर्चा करनी है शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न की।

शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न

एक बात जो स्पष्ट है कि शैक्षणिक संस्थाओं में आने वाले छात्र, शिक्षक तथा कर्मचारी तो उसी सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से हैं लेकिन हम अन्य सबसे अलग इन संस्थाओं को रखते हैं क्योंकि प्रारंभ से ही हम सुनते आ रहे हैं कि 'शिक्षा' समस्त सुधारों की जड़ है और 'शिक्षक' शब्द ही समुच्चय है आदर्शों का, मूल्यों का, प्रतिमानों का। यानी पूरे समाज निर्माण की धुरी है एक शिक्षण संस्था फिर चाहे यह पायदान के किसी क्रम पर क्यों न हो यानी नर्सरी हो, प्राइमरी हो, माध्यमिक हो, उच्च हो या फिर कोई प्रशिक्षण केंद्र ही क्यों न हो? हर जगह गढ़े जाते हैं सपने भविष्य के और तैयार किया जाता है एक संपूर्ण व्यक्तित्व। लेकिन जब बात शैक्षणिक संस्थाओं में लैंगिक उत्पीड़न की हो रही हो तो सामने आती है एक कड़वी सच्चाई जिसने शिक्षा व्यवस्था एवं शिक्षकों के ऊपर एक बड़ा प्रश्न खड़ा कर दिया है। आए दिन आने वाली ख़बरों से मन बड़ा खिन्न होता है लेकिन आज चर्चा करनी है ऐसे कुछ घृणित दृष्टांतों की जिसमें कटघरे में खड़ी है विश्व की सबसे बड़ी आदर्श संस्था-शिक्षण संस्था। अगर आप इसी विषय को गूगल करेंगे तो आपके सामने बड़े भयावह आँकड़े आएँगे जो यह बताते हैं कि यह रोज़मर्रा की एक चीज़ बन चुकी है जिसमें हर स्तर

और हर जगह की शैक्षणिक संस्थाओं में घटित घटनाओं का विवरण मिलता है।

भारत में लैंगिक उत्पीड़न पर रोक लगाने के लिए सर्वप्रथम 1997 में उच्चतम न्यायालय ने राजस्थान राज्य बनाम विशाखा के मामले में एक याचिका पर अपना निर्णय देते हुए कहा कि कामकाजी महिलाओं के संवैधानिक, मौलिक अधिकार जो मुख्य रूप अनुच्छेद 14, 15, 19(1)(g) और 21 के अंतर्गत उल्लिखित है, उनको प्रवर्तित करने की कोशिश होनी चाहिए। यदि लैगिंक उत्पीड़न होता हैं, तो इसे लिंग आधारित विभेद माना जाए जो समतामूलक प्रावधानों का उल्लंघन करता है और जिसके लिए राज्य अनुच्छेद 15(3) के तहत विशेष संरक्षणकारी प्रावधान बना सकता है और महिला के काम करने के एवं गरिमामय जीवन के अधिकार को सुनिश्चित कर सकता है क्योंकि जब तक कार्यस्थल सुरक्षित नहीं होगा तो वह अपने कार्य को ठीक ढंग से नहीं कर पाएगी। इन मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त जो अन्य प्रमुख संवैधानिक उपबंध है वह है? राज्य के नीति-निदेशक तत्त्वों की व्याख्या करने वाला अनुच्छेद 42 जो कार्य की एक मानवीय एवं न्यायपूर्ण दशा को सुनिश्चित करने एवं मातृत्व लाभ की योजना की बात करता है। मौलिक कर्त्तव्यों के अंतर्गत अनुच्छेद 51A(e) ऐसे समस्त व्यवहारों को त्यागना हर नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य बताता है जो महिला की गरिमा के विरुद्ध होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो विधियाँ बनाई जाती है उनमें से कुछ दिशा निर्देश के लिए होती है परंतु कुछ बाध्यकारी भी होती हैं यदि भारत ने उसे उसका अनुसमर्थन किया है तो और संविधान का अनुच्छेद 253 कहता है कि भारत अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने में सहयोग करेगा और अंतर्राष्ट्रीय विधियों एवं अभिसमयों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करेगा।

अनुच्छेद 253 कहता है कि भारत सरकार ऐसी विधियाँ बनाएगा जो अंतर्राष्ट्रीय अभिसमय में उल्लिखित प्रावधानों को लागू करने के लिए आवश्यक होंगे। जैसे -- मानव अधिकारों का सार्वभौमिक घोषणा-पत्र, महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के विभेदों को निवारित करने का अभिसमय CEDAW (Convention on Elimination of All Forms of Discrimination Against Women), महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को निवारित करने का घोषणा पत्र DEVAW (Declaration of Elimination of Violence Against Women) और शक्ति के दुरुपयोग एवं अपराध के पीड़ित लोगों को न्याय के आधारभूत सिद्धांतों का घोषणा-पत्र इत्यादि।

CEDAW का अनुच्छेद 11 कार्यस्थल पर महिलाओं के प्रति विभेद को ख़त्म करने के हर सम्भव प्रयास की बात करता है ताकि कार्य करने के अप्रतिसंहरणीय मानव अधिकार से किसी महिला को वंचित न किया जा सके।

इन्हीं प्रावधानों के प्रकाश में 'विशाखा' के मामले में उच्चतम न्यायालय ने गंभीर दिशा निर्देश दिए और कहा कि जब तक क़ानून नहीं बन जाता तब तक इन दिशा निर्देशों

को अनुच्छेद 141 के अंतर्गत क़ानून का दर्जा प्राप्त होगा। इस निर्णय की कमियों को 'मेधा कोटवाल' के केस में दूर करने का प्रयास किया गया और कार्यस्थल की परिभाषा को विस्तारित किया गया। इसके पश्चात् भी एक अधिनियम की आवश्यकता महसूस की जा रही थी और निर्भया के केस के बाद जब युद्ध स्तर पर विधियों को कठोर बनाने और बदलने की कोशिशें तेज़ हुई, तब कार्यस्थल पर महिलाओं के लैंगिक उत्पीड़न को निवारित करने, प्रतिष्ठित करने और प्रतितोष प्रदान करने के लिए 2013 में अधिनियम और नियम बनाए गए। ठीक इसके एक साल पूर्व 2012 में लैंगिक अपराधों से बालकों को संरक्षित करने के लिए अधिनियम बनाया गया। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने एक 'She Box' का भी प्रावधान किया है जिसमें सरकारी, ग़ैर-सरकारी, प्राइवेट संस्था में कार्यरत महिला शिकायत कर सकती है। इस पृष्ठभूमि में जो महत्त्वपूर्ण बातें हैं। वे ये कि इस अधिनियम का विस्तार संपूर्ण भारत पर है और जम्मू कश्मीर भी इसमें शामिल है। यह एक विशिष्ट विधायन है जिसका प्रभाव किसी अन्य अधिनियम में उपलब्ध उपचार से बाधित नहीं होगा यानी एक ही समय में इस अधिनियम के साथ अन्य उपचारों यानी Tort का मामला या I.P.C.में अपराध का मामला भी चलाया जा सकता है। इस अधिनियम में 'व्यथित महिला' की जो परिभाषा दी गई है उसमें किसी भी आयु वर्ग की महिला सम्मिलित है जो नियोजित है अथवा नहीं यानी कर्मचारी के अतिरिक्त छात्र भी शामिल हैं और कर्मचारी के अंतर्गत नियमित, अस्थायी, दैनिक, संविदाकर्मी, परिवीक्षाधीन व्यक्ति, कोई ठेकेदार -- उसका कर्मी इत्यादि शामिल हैं। कहने का अर्थ है कि जो कोई उस कार्यस्थल के कार्य से किसी भी प्रकार से संबंधित है वह इस परिभाषा में आएगा। अब प्रतिवाद या प्रत्यर्थी की परिभाषा महत्त्वपूर्ण है जहाँ अधिनियम में व्यक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है कि ऐसा कोई व्यक्ति जिसके ख़िलाफ़ महिला ने शिकायत की है यानी यह कर्मचारी, नियोक्ता, छात्र कोई भी हो सकता है। इस अधिनियम के प्रर्वतन के लिए जो नियम बनाए गए हैं जब उसको पढ़ते हैं तभी यह स्पष्ट होता है कि यहाँ प्रतिवादी से केवल पुरुष प्रत्यर्थी ही अभिप्रेत है महिला नहीं, यानी यह एक Gender specific legislation है Gender neutral नहीं।

POCSO एक Gender Neutral विधायन है और इसमें लैंगिक उत्पीड़न को एक दंडिक कृत्य बताया गया है यानी 18 वर्ष के नीचे के बालक एवं बालिकाओं में से किसी का लैंगिक उत्पीडन होता है तो वह बाल लैंगिक उत्पीड़न प्रतिषेध अधिनियम, 2012 (POCSO) में जा सकता है। यह कठोर दायित्व का विधायन है जिसमें मनःस्थिति की अवधारणा है और जिसे काटने का दायित्व अभियुक्त के ऊपर होगा यह संज्ञेय मामला होगा । यहीं पर मैं यह भी उल्लेख करना चाहूँगी कि समस्त उच्च शिक्षण संस्थान जो UGC के अंतर्गत आते हैं उसके विनियम से शासित होंगे जिसने SAKSHAM Report

के आधार पर मई 2016 से यह अधिसूचित कर दिया है कि समस्त शैक्षिक संस्थान लैंगिक उत्पीड़न के प्रति zero tolerence की नीति अपनाएँगे। यहाँ परिसर की बहुत व्यापक परिभाषा दी गई है जिसमें स्वास्थ्य केंद्र बैंक, स्टेडियम, हॉल या कोई ऐसा स्थान जो शैक्षणिक या शिक्षणेतर गतिविधि के लिए प्रयुक्त हो रहा है, शामिल है। लैंगिक उत्पीड़न की परिभाषा अधिनियम के अर्थों में की गई है और यह कहा गया है कि ऐसा कोई भी अनचाहा आचरण जिसमें छिपे रूप से लैंगिक भावनाएँ प्रकट हो जाती है अथवा एक प्रतिकूल या धमकी भरा वातावरण पैदा करती हैं शामिल हैं।

छात्र की भी अत्यंत विस्तृत परिभाषा दी गई है और इसमें स्त्री, पुरुष या तृतीया (किन्नर) सभी को शामिल किया गया है। यहाँ तक कि प्रवेश पाने की प्रक्रिया में लगा व्यक्ति भी छात्र माना जाएगा। इसमें डिग्री, डिप्लोमा, लघु अवधि प्रशिक्षण कार्यक्रम में शामिल छात्र भी शामिल है। यानी यह भी Gender Neutral विनियम है। इसमें ''उत्पीड़न'' भी परिभाषित है -- जो कहता है कि ऐसा कोई भी नकारात्मक व्यवहार जिसमें छिपे तौर पर या सीधे तौर पर लैंगिक दुर्भावना की नीयत छिपी होती है।

इसमें शैक्षणिक संस्थानों के दायित्व की भी चर्चा की गई है जो अधिनियम में उल्लिखित नियोक्ता के दायित्व पर आधारित है जिसमें सभी लिंगों के कर्मचारियों एवं छात्रों को समस्त लिंग आधारित हिंसा के विरुद्ध निर्णयात्मक रूप से सक्रिय बनाना, Zero Tolerence policy में नीति अपनाना शामिल है और लैंगिक उत्पीड़न को सेवा नियमों के तहत दुराचार मानना और यदि छात्र करता है तो अनुशासनहीनता मानना और तद्नुसार कार्यवाही करना, यानी आंतरिक शिकायत समिति (ICC) को समस्त आवश्यक संसाधन उपलब्ध कराना शामिल है। ICC में छात्र प्रतिनिधियों को रखने का प्रावधान है। लेकिन इस बात का विशेष उल्लेख है कि प्रशासनिक पदों पर व्यक्ति इसमें न हों क्योंकि सत्ता के कुप्रभावों से भी हम सब परिचित हैं। कमेटी के अन्य सदस्यों के संबंध में वही प्रावधान है जो अधिनियम में दिए गए हैं जिनका कार्यकाल 3 वर्ष का होगा लेकिन जिन्हें बीच में भी हटाया जा सकता है। इस प्रावधान का कभी-कभी नियोक्ता द्वारा दुरुपयोग भी किया जाता है यानी जिसके ख़िलाफ़ रिपोर्ट है यदि उसके ख़िलाफ़ कार्यवाही नहीं करनी है तो आंतरिक शिकायत समिति के सदस्यों को ही बदल दो।

यहाँ शिकायत करने संबंधी नियम भी अधिनियम की ही तरह है यानी 3 महीने के भीतर शिकायत दर्ज़ करानी होगी। लेकिन यदि आंतरिक शिकायत समिति उचित समझे तो पर्याप्त कारणों को लेखबद्ध करते हुए तीन महीनों तक का और समय दे सकती है अर्थात् किसी भी हाल में 6 महीने से ज़्यादा विलंब नहीं होना चाहिए। व्यथित पक्षकार के अलावा भी कोई व्यक्ति परिवाद दायर कर सकता है यदि पीड़ित को किसी प्रकार की शारीरिक, मानसिक, अक्षमता है या मृत्यु हो गई है। अधिनियम में सुलह संबंधी प्रावधान

किया गया है लेकिन इसका आधार आर्थिक नहीं होना चाहिए। ऐसा ही विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियम में भी कहा गया है। यदि सुलह की शर्तें नहीं मानी गई तो पुनः आंतरिक शिकायत समिति अपनी जाँच प्रारंभ कर देगी और अपने निर्णय की प्रति दोनों पक्षकारों को देगा ताकि यदि वह चाहें तो उस निर्णय के विरुद्ध अभ्यावेदन दे सकते हैं।

आंतरिक शिकायत समिति के पास एक सिविल न्यायालय की शक्ति होती है जिसमें वह किसी भी व्यक्ति को समन कर सकती है और शपथ पत्र पर उनकी जाँच कर सकती है। जाँच के लंबित रहने के दौरान यदि महिला चाहे तो उसे तीन माह की छुट्टी दी जा सकती है या अन्यत्र ट्रांसफर किया जा सकता है यदि आंतरिक शिकायत समिति ऐसी संस्तुति दे तो वह अपनी रिपोर्ट पूरी होने के 10 दिन के भीतर नियोक्ता को दे देगी और यदि आरोप सिद्ध होते हैं तो कार्यवाही के लिए अनुमोदन कर सकती है। नियोक्ता अनुमोदन प्राप्त होने के 60 दिन के भीतर कार्यवाही करेगा। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियम में यह अवधि 30 दिन की है (यदि कोई अपील कोई पक्षकार नहीं दाख़िल करता है) तो समय-सीमा प्रक्रिया का प्रावधान है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के विनियम में भी यहाँ शिकायत मिलने पर इसकी एक प्रति प्रतिवादी को 7 दिनों के भीतर ही दे दी जाएगी जिसमें प्रतिवादी 10 दिनों के भीतर समस्त दस्तावेज़ों की सूची, गवाहों के नाम एवं पता सहित दाख़िल करेगा। 90 दिनों में जाँच पूरी हो जानी चाहिए। अधिनियम की धारा 14 और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम 11 में यह प्रावधान किया गया है कि आंतरिक शिकायत समिति यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि झूठी या विद्वेषपूर्ण शिकायत की गई है तो शिकायत कर्ता के विरुद्ध कार्यवाही की जाएगी।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने यह भी प्रावधान किया है कि जिन संस्थानों में इन नियमों का अनुपालन नहीं किया जाएगा उन्हें विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सुविधाओं से वंचित कर दिया जाएगा। अधि. में यह भी प्रावधान है कि सूचना के अधिकार के किसी प्रावधान के होते हुए भी परिवाद की विषय-वस्तु, पीड़िता की पहचान, प्रत्यर्थी एवं गवाहों का नाम सुलह की सूचना, जाँच की सूचना या अनुशंसा की सूचना जनसाधारण को या प्रेस एवं मीडिया को नहीं दी जाएगी। जो कोई ऐसा करेगा उसे सेवा नियमों के तहत जुर्माना भी देना होगा।

आंतरिक शिकायत समिति की रिपोर्ट के विरुद्ध 90 दिनों के भीतर कोई भी पक्षकार न्यायालय में अपील कर सकता है। यदि कोई संस्थान आधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन नहीं करता है तो उसे 50 हज़ार रुपए का जुर्माना देना पड़ सकता है। अधिनियम के अंतर्गत जो नियम बनाए गए है उसमें यह उल्लिखित है कि शिकायत पत्र की 6 कॉपी सभी दस्तावेज़ों एवं साक्षियों के नाम और पते के साथ जमा की जाएगी। यदि समिति

की तीन बैठकों में कोई पक्षकार लगातार अनुपस्थित रहता है तो एकपक्षीय आदेश भी पारित किया जा सकता है। इस नियम में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है है कि कोई पक्षकार अपनी तरफ़ से किसी वकील को लेकर नहीं आएगा।

ऐसे नियमों और विनियमों के बावजूद जो यथार्थ तस्वीर है वह कुछ और ही कहानी बयाँ करती है। इसमें सबसे दयनीय स्थिति प्राइवेट शिक्षण-संस्थाओं की हैं जिसमें शिकायत करने वाले को न सिर्फ़ निकाल दिया जाता है वरन् उन्हें क़ानूनी आतंकवादी की संज्ञा भी दे दी जाती है। उनके लिए 'सुधर जाओ या नौकरी से जाओ' का ही सिद्धांत अपनाया जाता है। यहाँ 'क्षमा करो' और 'भूल जाओ' की बात की जाती है और S.H को Occupational Hazard बताया जाता है जिसे कामकाजी महिलाओं को अपनी नियति मानकर स्वीकार करना होता है ऐसी बात ग़रीब मज़दूरों के साथ ही नहीं वरन् हॉलीवुड और बॉलीवुड के सिने तारिकाओं तक भी लागू होती है तभी #Me too जैसा अभियान चलाया गया है।

दुःख तो तब होता है जब झूठ सच का निर्णय हुए बिना शिकायत करने मात्र से किसी को नौकरी से हाथ धोना पड़ जाता है तो कोई इस्तीफ़ा देने के लिए मजबूर हो जाता है। एक मामला महिला प्रोफेसर का है तो दूसरा एक महिला न्याय अधिकारी का है। 'मामला सिद्ध नहीं होना' और 'शिकायत झूठी होना' दो भिन्न चीज़ें है जिसे सदैव ध्यान रखना चाहिए। साक्ष्यों का न होना अनुपस्थिति का साक्ष्य नहीं होता। हमें शिकायत करने वाले सूचना दाता को संरक्षण प्रदान करना चाहिए और उनके ख़िलाफ़ बदले की भावना नहीं होनी चाहिए। वैसे भी शिकायत करने का निर्णय लेना, साक्ष्य जुटाना, सुनवाई हेतु प्रस्तुत होना यह सब सामान्य तौर पर उतना आसान नहीं होता और ज़्यादातर लोग इससे बचना ही चाहते हैं। यदि शिकायत आती है या शिकायतों की संख्या बढ़ती है तो उसे अपने संस्थान की प्रतिष्ठा पर सवाल उठाना न मानकर यह मानना चाहिए कि हमारी संवेदनशीलता पर पीड़िता को भरोसा है अन्यथा उसके लिए तो सामान्य विधियों के तहत भी विकल्प खुले हैं। अधिनियम और विनियम बनने के बावजूद कुछ ऐसा है जिसने उच्चतम न्यायालय को बाध्य किया कि उसने इसी फरवरी की 9 तारीख को एनीशिऐटिव फॉर इन्क्लुशिन फाउंडेशन नाम की एक ग़ैर-सरकारी संस्था से यह सलाह माँगी है कि कैसे ऐसी घटनाओं को रोका जाए।

समाज की सोच को बदलने की आवश्यकता है और शिक्षण संस्थाओं में कार्यरत् प्रत्येक कर्मचारी, अधिकारी, शिक्षक और छात्र को शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों को समझने की आवश्यकता है। एक वैधानिक नैतिकता की बात करनी होगी। हर व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर बदले और बदलाव की यह प्रक्रिया सतत् चलती रहे।

❑

डॉ. सूफिया अहमद

सरोगेसी : एक ज्वलंत मुद्दा

परिवार मानव सभ्यता कि एक स्वाभाविक आवश्यकता है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही यह समाज की प्राथमिक इकाई के रूप में अस्तित्व में है। लगभग सभी धर्मो में परिवार, विवाह एवं संतान उत्पत्ति को एक पवित्र कर्तव्य के रूप में दर्शाया गया है। विवाह एवं संतान उत्पत्ति समाज में इतना अधिक महत्त्वपूर्ण है कि जिसके कारण बाँझपन को समाज में एक कलंक के रूप में देखा जाता है। हालाँकि बाँझपन एक वैश्विक समस्या है, परन्तु भारतीय समाज में इसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक आयाम हैं।

प्राचीन समय से ही विवाहित दम्पति बाँझपन की समस्या से छुटकारा पाने के लिए विभिन्न उपायों और औषधियों का प्रयोग करते आ रहे हैं। वर्तमान समय में चिकित्सा की नयी पद्धतियों एवं तकनीकी आविष्कार के कारण बहुत से नये उपायों की खोज की गयी है। सरोगेसी भी एक ऐसा उपाय है जो निःसंतान दंपतियों को जैविक रूप से जुड़ी संतान प्रदान करने में अत्यंत कारगर सिद्ध हुई है। सामान्य शब्दों में सरोगेसी एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक स्त्री किसी अन्य के लिए शिशु को जन्म देती है और शिशु को जन्म के बाद उस अन्य निःसंतान दंपतियों को सुपुर्द कर दिया जाता है।

सरोगेसी के विभिन्न प्रकार हैं।

1. पारम्परिक सरोगेसी : इस प्रकार के सरोगेसी में सरोगेट माँ जो कि शिशु की जैविक माँ भी होती है, उसे पिता के शुक्राणु से गर्भ धारण कराया जाता है। इस प्रकार के सरोगेसी में सरोगेट माँ का अंडाणु और निःसंतान पिता का शुक्राणु से निषेचन के माध्यम से शिशु को जन्म दिया जाता है ।

2. जेस्टेशनल सरोगेसी : ये सरोगेसी का सबसे प्रचलित प्रकार है, इसमें एक स्त्री जो कि शिशु से जैविक रूप से सम्बंधित नहीं होती है, वह शिशु को जन्म देती है। इस विधि में आई.वी.एफ. तकनीकी की मदद से सरोगेट माँ के गर्भ में भ्रूण को स्थानांतरित किया जाता है।

3. कमर्शियल सरोगेसी : इस प्रकार के सरोगेसी में सरोगेट माँ को शिशु को जन्म देने के बदले भुगतान किया जाता है। कमर्शियल सरोगेसी प्रारंभ से ही विवादित रहा है, क्योंकि इसमें सरोगेट माँ को शिशु को जन्म देने के बदले में भुगतान किया जाता है, जिसे अनैतिक माना जाता है और आलोचक इसे ख़रीद-फरोख़्त का नाम देते हैं।

परोपकारी (अल्ट्रइस्टिक) सरोगेसी : इस प्रकार के सरोगेसी में माँ पैसे के लिए नहीं, बल्कि स्नेह या लगाव, परोपकार के उद्देश्य से एक निःसंतान दम्पति के लिए शिशु को जन्म देती है ।

वर्तमान समय में प्रचलित विभिन्न आधुनिक प्रजनन तकनीकों जैसे आई.वी.एफ. एग डोनेशन, कृत्रिम गर्भ-धारण इत्यादि में सरोगेसी सबसे विवादित प्रजनन तकनीकी है। परिवार नाम की पवित्र संस्था जो पति पत्नी के प्यार और विश्वास पर टिकी है , सरोगेसी के कारण उसका व्यावसायिकरण हो रहा है। संतानहीन पति पत्नी बाँझपन के कलंक से बचने के लिए कोई भी क़ीमत चुकाने को तैयार हैं जिसके कारण डॉक्टर और क्लिनिक उनका भरपूर शोषण करते हैं।

भारत का संविधान सभी नागरिकों को समानता और जीवन का अधिकार प्रदान करने की गारंटी देता है। पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधा प्राप्त करना भी अनुच्छेद 21 के अंतर्गत प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार के अंतर्गत शामिल है। कमर्शियल सरोगेसी के द्वारा कुछ उच्च आय के संपन्न लोग पैसे का भुगतान करके शिशु प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर एक निम्न वर्ग का व्यक्ति स्वास्थ्य सम्बन्धी आधारभूत सुविधाओं से वंचित है। प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र जहाँ बेसिक स्वास्थ्य सुविधा ही उपलब्ध नहीं है, ऐसी स्थिति में हम यह कल्पना कैसे कर सकते हैं कि प्रजनन की आधुनिक तकनीक समाज के सभी व्यक्तियों को उपलब्ध होगी। इसके अतरिक्त, स्त्रीवादी विचारक भी सरोगेसी का पुरज़ोर विरोध करते हैं। इस आधार पर कि स्त्री के शरीर एवं उसके प्रजनन क्षमता का व्यावसायीकरण किया जाना अनैतिक है।

सरोगेसी एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे सरोगेट माँ एक बच्चा पैदा करने वाली मशीन बनती जा रही है और उसके गर्भ को किराए पर चढ़ाया जा रहा है।

विभिन्न शोध अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि सरोगेट माँ को बच्चे से जन्म के बाद जब दूर किया जाता है तो उसके अंदर विभिन्न मनोवैज्ञानिक विकार विकसित होते हैं। बच्चे को स्तनपान न करने के कारण भी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या उत्पन्न होती है। एक नागरिक के रूप में सरोगेट माँ को स्वास्थ्य से संबंधित अधिकारों की सुरक्षा के लिए कहीं कोई उपाय नहीं है। उदहारण के लिए, गर्भ के दौरान विकसित स्वास्थ्य संबंधित समस्या, शिशु को जन्म देने के बाद उत्पन्न होने वाली स्वास्थ्य समस्याएँ,

जन्म के दौरान सरोगेट माँ की मृत्यु होने की स्थिति में उसके और उसके परिवार की सुरक्षा के लिए कोई व्यवस्था का होना इत्यादि।

भारत सरकार के द्वारा प्रस्तुत किया गया सरोगेसी बिल, 2016 इस संबंध में आंशिक रूप से प्रशंसनीय क़दम है। इसके अंतर्गत विदेशी सरोगेसी और कमर्शियल सेरोगेसी पर प्रतिबंध लगाया गया है। इसके अतिरिक्त, सरोगेट माँ की आयु 25 से 35 निर्धारित की गई है। केवल परोपकारी सरोगेसी को ही मान्यता दी गई है। साथ ही केवल निःसंतान विवाहित दंपति को केवल एक बार सरोगेसी के माध्यम से बच्चा पैदा करने की अनुमति प्रदान की गई है।

यह स्पष्ट है कि सरोगेसी के कारण भारत में जो फर्टिलिटी बाज़ार विकसित हुआ है उस पर यह बिल आंशिक प्रतिबंध लगा पाएगा। परंतु केवल विवाहित निःसंतान दंपति को ही सरोगेसी की सुविधा प्रदान करना उचित प्रतीत नहीं होता है।

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि निःसंदेह सरोगेसी निःसंतान लोगों के लिए एक वरदान है परंतु इसका व्यावसायीकरण किसी भी प्रकार से उचित नहीं है। साथ ही सरोगेट बच्चे के हित को सर्वोपरि रखे जाने की आवश्यकता है।

❑

सन्तोष खन्ना

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 एक लाभकारी एवं क्रांतिकारी क़ानून

13 सितंबर, 2018 के हिंदुस्तान टाइम्स में 76-वर्षीय लेखक और स्चिज़ोफ्रीनिया से पीड़ित अपनी बेटी की देखभाल करने वाले अमृत बख्शी का आलेख मानसिक रोगों से पीड़ित व्यक्तियों की स्थिति, उपचार, उनकी देखभाल में आने वाली कठिनाइयों आदि के बारे में काफ़ी लाभकारी सूचनाएँ देने वाला है। अपनी बेटी की मानसिक बीमारी के दौरान उसकी देखभाल करने के उन्होंने अपने अनुभवों को शेयर करते हुए बताया है कि ऐसे रोगियों के उपचार और देखभाल में क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए। बेटी की बीमारी के कारण वह भारत की 'स्चिजोफ्रीनिया अवेयरनेस 'संस्था' से तो जुड़े ही, बल्कि उसके अध्यक्ष भी बने और भारत सरकार द्वारा प्रस्तावित मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विधेयक से संबद्ध विशेषज्ञ समिति में रहे और उनका कहना था कि अब यह जो मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 बना है वह न केवल मानसिक रोगियों के अधिकारों और उनके कल्याण की बात करता है बल्कि यह मानसिक रोगियों की देखभाल करने वालों के हितों का भी ध्यान रखता है। इस क़ानून के अध्ययन से यह पता चलता है कि वास्तव में मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में यह एक क्रांतिकारी क़ानून है।

भारत में जनसंख्या विस्फोट के साथ मानसिक रोगियों की संख्या में भी उछाल आता जा रहा है जिसके अनेक कारण हो सकते हैं। यह बात भी सत्य है कि मानसिक रोगों के बारे में सामान्यतया सही जानकारी का बहुत अभाव है। मानसिक रोगों को प्रायः छुपाने की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है क्योंकि इसे कहीं पाप माना जाता है तो कहीं सामाजिक कलंक, लोग बदनामी के डर से रोगी का इलाज नहीं कराते जबकि इलाज से मानसिक रोगी का रोग ठीक हो सकता है या कम-से-कम रोग को बढ़ने

से रोका जा सकता है। अमृत बख्शी ने भी मानसिक रोग के बारे में कहा है कि मानसिक रोग हो जाते हैं, इसमें न तो किसी का कसूर होता है न तो माँ का, न बाप का और न ही मानसिक रोगी का। मानसिक रोग पाप नहीं है। इनका उपचार भी अन्य रोगों की तरह होना चाहिए। इन रोगों को छिपाना नहीं, बल्कि चिकित्सक या मनोचिकित्सक को बताया जाना चाहिए और उनकी सलाह के अनुसार ही रोगी की देखभाल करनी चाहिए।

आमतौर पर लोगों में मानसिक रोगों के बारे में चेतना और जानकारी के अभाव में जितनी मानसिक रोगी और उसके परिवार के देखभाल करने वालों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, रोग के बारे में जानकारी होने और इस संबद्ध में क़ानून के अंतर्गत प्रदान की जा रही सुविधाओं के बारे में जानने से रोगी और देखभाल करने वालों का जीवन सहज और सरल हो सकता है तो आइए, यहाँ जाने कि भारत की संसद द्वारा बनाया गया मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 क्या है और उसमें मानसिक रोगी को दिए गए अधिकार क्या हैं?

7 जुलाई, 2018 को लागू हुए इस क़ानून का उद्देश्य है मानसिक रोगियों के मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल करना और सेवाएँ प्रदान करने के साथ-साथ मानसिक रोगियों के अधिकारों का संरक्षण करना और उन्हें उनके अधिकार सही परिप्रेक्ष्य में बिना किसी भेदभाव के सुनिश्चित करना है। मानसिक स्वास्थ्य देखभाल क़ानून, 2017 की धारा 2(ओ) में मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषा दी गई है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति का विश्लेषण कर रोग का निदान करना, उसके रोग का उपचार करना और रोगी का पुनर्वास करना है।

रोगी की मानसिक बीमारी का निदान विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा प्रतिपादित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय चिकित्सा मानकों के अनुसार किया जाएगा। इस क़ानून के अंतर्गत प्रत्येक प्रावधान को यथासंभव स्पष्ट रूप से बताया गया है। इस क़ानून में मानसिक रोगी के और उसके उपचार के संबंध में उसके द्वारा अथवा अन्यथा नामित प्रतिनिधि के लिए अनेक अधिकार प्रदान किए गए हैं। सरकार का यह दायित्व होगा कि वह देश में मानसिक बीमारियों की रोकथाम करने तथा साथ ही मानसिक स्वास्थ्य के तथा संवर्द्धन के लिए कार्यक्रमों को बनाएगी और उन्हें क्रियान्वित करेगी। इसके साथ ही इन क़ानून के बारे में जनता में जागृति फैलाने का कार्य भी करेगी।

वर्ष 2017 में भारत की संसद ने मानसिक स्वास्थ्य के बारे में अत्यंत महत्त्वपूर्ण क़ानून पास कर उसे लागू किया है। इससे पहले भारत में 1987 में बनाया गया मानसिक स्वास्थ्य क़ानून लागू था। दिसंबर, 2006 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने विकलांग व्यक्तियों

के अधिकार और वैकल्पिक प्रोटोकॉल अपनाया था जिसे 3 मई, 2008 को लागू किया गया। भारत ने इसे अक्तूबर, 2007 में अनुमोदित किया। इस प्रोटोकॉल के अनुसार भारत में मानसिक बीमारी से पीड़ित व्यक्तियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 बनाया गया। प्रश्न यह है कि यह क़ानून पहले मानसिक स्वास्थ्य क़ानून से अलग कैसे है?

वास्तव में पहले मानसिक व्यक्तियों को समाज से अलग रखने की व्यवस्था की जाती थी ताकि ये लोग समाज के लिए ख़तरा सिद्ध न हों। इन्हें मानसिक रूग्णालयों में रखा जाता था अर्थात् इन्हें समाज से दूर अलग अभिरक्षा में रखा जाता था। इस प्रकार के अस्पताल भारत में पश्चिमी तर्ज पर बनाए गऐ थे जबकि भारत में परंपरागत और सांस्कृतिक रूप से मानसिक रोगियों का इलाज भी अन्य रोगियों के इलाज की तरह किया जाता था। भारत में 1987 में मानसिक स्वास्थ्य क़ानून बनाया गया था।

अब मानसिक स्वास्थ्य देखभाल क़ानून, 2017 ने उस क़ानून का स्थान ले लिया है। मानसिक स्वास्थ्य देखभाल बिल, 2016 राज्य सभा में अगस्त, 2016 को और लोक सभा में मार्च, 2017 में पास किया गया था। उससे पहले इस विधेयक को एक संसदीय समिति को भेजा गया था जिसने इसका अध्ययन कर इस विधेयक में कई संशोधन सुझाए थे। इस क़ानून के बनने और लागू होने के बाद मानसिक रोगियों को पहली बार मानसिक स्वास्थ्य की देखभाल का एक न्यायिक अधिकार प्रदान किया गया है। इस क़ानून के अंतर्गत यह प्रावधान किया गया है कि मानसिक रोगी को समाज के अंदर रखा जाए, उसे अलग से न रखा जाए। यह क़ानून एक बहुत व्यापक क़ानून है। 126 धाराओं वाले इस क़ानून में 16 अध्याय हैं। इसमें कई नए महत्त्वपूर्ण उपबंध किए गए हैं। एक प्रावधान यह है कि प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को अग्रिम निर्देश (Advance Directive) देने का अधिकार होगा। यह अग्रिम निर्देश एक प्रकार से वसीयत की तरह होंगे और उनका अनुपालन अनिवार्य होगा। आत्महत्या का प्रयास करने वाले व्यक्तियों को इस क़ानून के अंतर्गत मानसिक बीमार घोषित किया गया है और उसके संबंध में आत्महत्या अब अपराध नहीं है। अतः आत्महत्या करने वालों को भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत दंड नहीं दिया जाएगा। पहले आत्महत्या करने वाले अगर जीवित बचा लिए जाते थे तो उन्हें आत्महत्या करने के अपराध में दंड दिया जा सकता था।

अग्रिम निर्देश (Advance Directive)

सबसे पहले हम 'अग्रिम निर्देश' की बात करते हैं :

अग्रिम निर्देश कौन लिख सकता है और कैसे लिख सकता है, इसे अच्छी तरह

समझ लेना चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 4 में इसके बारे में विस्तार से लिखा गया है। हर व्यक्ति चाहे वह मानसिक रोगी ही क्यों न हो, अपने मानसिक स्वास्थ्य के बारे में देखभाल अथवा उपचार के बारे में फैसला ले सकता है और उसे अपने 'अग्रिम निर्देश' में लिख कर रख सकता है कि यदि उसे कभी इस प्रकार की देखभाल या उपचार की ज़रूरत पड़े, उसका इलाज उसके 'अग्रिम निर्देश' में लिखे गए निर्देशानुसार किया जाए। 'अग्रिम निर्देश' लिखने वाले व्यक्ति में यह जानने की क्षमता होनी चाहिए कि ऐसी देखभाल या उपचार होता क्या है? उसके बारे में फैसले लेने के लिए उसके परिणाम क्या होंगे, इसकी भी उसे समझ होनी चाहिए। 'अग्रिम निर्देश' या तो वह स्वयं सरल भाषा में लिख सकता है या फिर उसकी ओर से कोई अन्य व्यक्ति सरल भाषा में उसे लिख सकता है। यदि उसके 'अग्रिम निर्देश' को कोई अनुचित या सही नहीं मानता, इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह व्यक्ति 'अग्रिम निर्देश' के बारे में सक्षम नहीं है। हर व्यक्ति 'अग्रिम निर्देश' को कभी भी लिख सकता है। धारा 5 में कहा गया है कि हर व्यस्क व्यक्ति को अग्रिम निर्देश लिखित रूप में बनाने का अधिकार है। उसे यह भी लिखने का अधिकार है कि उसे कैसी देखभाल और उपचार मिले, इसकी निगरानी के लिए वह एक या एक से अधिक व्यक्तियों का नामांकन कर सकेगा। ऐसे 'अग्रिम निर्देश' को पंजीकृत करवाना अनिवार्य होगा। इसका पंजीकरण बोर्ड में रखे गए रजिस्टर में ऑनलाईन करवाया जा सकता है और ज़रूरत पड़ने पर यह अग्रिम निर्देश उपचार करने वाली एजेंसी को उपलब्ध करवाया जाएगा। मानसिक रोग के उपचार के लिए प्रत्येक चिकित्सक को उस व्यक्ति के अग्रिम निर्देश के अनुसार उपचार करना होगा। यदि किसी व्यक्ति के मानसिक उपचार के दौरान डॉक्टर या उस बीमार का कोई संबंधी या देखभाल करने वाला उस अग्रिम निर्देश का पुनरीक्षण, परिवर्तन या रद्द करना चाहे तो उसके लिए ज़िला पुनरीक्षण बोर्ड को एक आवेदन देना होगा जिस पर सभी पक्षों की सुनवाई कर बोर्ड फैसला देता है। 'अग्रिम निर्देश' में दिए गए तरीक़े से उपचार करने से अगर कहीं कोई दुष्परिणाम निकलता है तो चिकित्सक या सेवा प्रदाता को उसके लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण एवं राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण

इस अधिनियम की धारा 18 के अंतर्गत सभी व्यक्तियों को सरकारी मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य देखभाल और उपचार का अधिकार होगा। मानसिक रोगियों को अन्य रोगियों की भाँति ही उपचार पाने का समान अधिकार होगा। उसके साथ किसी भी आधार का भेदभाव नहीं किया जा सकता। मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ सही ढंग से संचालित हों, इसके लिए केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण तथा प्रत्येक

राज्य में राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण स्थापित किए जाएँगे। केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण का स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय का सचिव अथवा अवर सचिव पदेन अध्यक्ष होगा और संयुक्त सचिव पदेन सदस्य होगा। इसके अतिरिक्त, स्वास्थ्य सेवा महानिदेशक, सामाजिक न्याय और सशक्तिकरण मंत्रालय के अशक्य विभाग के संयुक्त सचिव, महिला और बाल विकास मंत्रालय के संयुक्त सचिव, केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य संस्थान के निदेशक इसके पदेन सदस्य होंगे। यही नहीं, इसमें अनुभवी मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सक, मनोचिकित्सक आदि भी होंगे।

केंद्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण तथा राज्य स्वास्थ्य प्राधिकरणों को महत्त्वपूर्ण दायित्व दिए गए हैं जो इस प्रकार हैं :--

1. सभी मानसिक स्वास्थ्य संस्थानों का पर्यवेक्षण एवं पंजीकरण करना।
2. मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सकों का रजिस्टर तैयार करना।
3. इन संस्थानों द्वारा उपलब्ध की जाने वाली सेवाओं के लिए मानक बनाना।
4. इस क़ानून के प्रावधानों को लागू करने वाले अधिकारियों और चिकित्सकों को प्रशिक्षण देना।
5. चिकित्सा में कमी की शिकायतें स्वीकार करना।
6. मानसिक स्वास्थ्य से संबद्ध मुद्दों पर सरकार को सलाह देना।
7. मानसिक रोगियों के अधिकारों की सुरक्षा के लिए मानसिक स्वास्थ्य आयोग (Mental Health Commission) बनाना, जो अर्द्धन्यायिक होगा।

इस अधिनियम को लागू करने के लिए एक केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण निधि का गठन किया जाएगा जिसमें संसद से अनुमोदित अनुदान दिया जाएगा। इस निधि का भारत के नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक की सलाह से लेखों की लेखा परीक्षा की जाएगी। इसी प्रकार राज्य स्तर पर ऐसी ही निधि की स्थापना की जाएगी।

मानसिक रोगियों के अधिकार

मानसिक रूप से बीमार व्यक्तियों को इस क़ानून के अंतर्गत अनेक अधिकार दिए गए हैं। इसमें कहा गया है कि सभी व्यक्तियों को सरकार द्वारा वित्त पोषित या संचालित संस्थान की मानसिक उपचार और देखभाल जैसी सेवाएँ प्राप्त करने का अधिकार होगा। उसे मानसिक चिकित्सा सेवा सस्ते में पर्याप्त मात्रा में सभी स्थानों पर उपलब्ध कराई जाएगी और उनके साथ लिंग, धर्म, जाति, संस्कृति, सामाजिक या राजनीतिक विश्वास, अशक्यता के आधार पर भेदभाव नहीं किया जाएगा।

1. मानसिक रोग से पीड़ित व्यक्तियों के लिए ओ.पी.डी. और अस्पतालों में सभी प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी सेवाओं की व्यवस्था भी की जाएगी।

2. ऐसे व्यक्तियों के लिए हाफ-वे होम, आश्रम आवास आदि की व्यवस्था की जाएगी।

3. ऐसे रोगियों और उनके परिवारों को पुनर्वास सुविधा भी उपलब्ध कराई जाएगी।

सभी मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ ज़िला स्तर पर उपलब्ध कराई जाएँगी। यदि किसी ज़िले में इन सुविधाओं की व्यवस्था नहीं है तो मानसिक रोगी को उसे दूसरे ज़िले में उपलब्ध मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ मिल सकती हैं जिसका व्यय सरकार से लिया जा सकेगा। ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले अथवा बेघर मानसिक रोगियों को यह सेवाएँ मुफ़्त में प्रदान की जाएँगी।

मानसिक रोगियों को समाज में रहने, समाज का हिस्सा होने का अधिकार होगा। उसे समाज से अलग नहीं रखा जाएगा। उसे मानसिक अस्पताल में इस आधार पर नहीं रखा जाएगा कि उसका परिवार नहीं है, या परिवार उसे अपने साथ नहीं रखना चाहता या उसका घर नहीं है अथवा समाज में उसके रहने के लिए सुविधाएँ नहीं हैं। यदि परिवार उसे अपने साथ नहीं रखना चाहता तो सरकार उसे क़ानूनी अथवा अन्य सहायता दे कर यह सुनिश्चित करेगी कि वह अपने परिवर के घर में रह सके।

प्रत्येक मानसिक रोगी को गरिमा के साथ जीने का अधिकार होगा। उसके साथ किसी मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जाएगा। इसलिए मानसिक रोगी के लिए यह सरकार की ओर से यह सुनिश्चित किया जाएगा :--

1. मानसिक रोगी को सुरक्षित एवं साफ़-सफ़ाई वाले परिवेश में रखा जाए।
2. वहाँ स्वच्छता की पर्याप्त व्यवस्था हो।
3. उसे आराम, आमोद-प्रमोद, शिक्षा और धार्मिक, सभी प्रकार की पर्याप्त सुविधाएँ दी जाएँ।
4. उसे एकांतिकता का अधिकार भी होगा।
5. गरिमापूर्ण जीवन जीने के लिए, उसके लिए उपयुक्त वस्त्रों का प्रबंध किया जाएगा। उन्हें अपने कपड़ों को पहनने की इज़ाज़त होगी, उन्हें यूनीफार्म पहनने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। मानसिक स्वास्थ्य संस्थान में उसे कार्य करने के लिए बाध्य नहीं किया जाए। यदि वह स्वेच्छा से कोई कार्य करना चाहेगा तो उसके लिए भुगतान किया जाएगा।
5. मानसिक रोगी के लिए स्वस्थ पोष्टिक भोजन, साफ़-सफ़ाई के लिए उपयुक्त वस्तुएँ विशेष रूप से महिला मानसिक रोगियों को स्वच्छता संबंधी वस्तुएँ और मासिक धर्म के दौरान उपयुक्त वस्तुएँ प्रदान की जाएँगी।

6. उनका जबरन सिर नहीं मुँडाया जाएगा। उनकी शारीरिक, भावनात्मक अथवा यौन शोषण से सुरक्षा की जाएगी।

मानसिक रोगियों और उसके प्रतिनिधियों को मनोरोगी संबंधी सभी प्रकार की सूचनाएँ प्रदान की जाएँगी। उसके बारे में जानकारी गुप्त रखी जाएगी। उन्हें उनके चिकित्सा अभिलेखे प्राप्त करने का भी अधिकार होगा।

मानसिक स्वास्थ्य केंद्र

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल क़ानून में यह कहा गया है कि मानसिक स्वास्थ्य स्थापनाएँ या केंद्र बनाने के लिए उनका पंजीकरण होना ज़रूरी है। इसके संबंध में केंद्रीय मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण अथवा राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरण इन केंद्रों का पंजीकरण करेंगे। इन केंद्रों के पंजीकरण और उन पर निगरानी के बारे में व्यापक प्रावधान किए गए हैं। पंजीकरण कराने वाले को प्राधिकरणों द्वारा बनाए गए मानकों का अनुपालन करना होगा। इन सभी केंद्रों के लेखों की हर तीसरे वर्ष लेखा परीक्षा की जाएगी। यदि कोई केंद्र प्राधिकरणों द्वारा तय किए गए मानकों का उल्लंघन करेगा तो उसका पंजीकरण रद्द किया किया जा सकता है। ऐसे केंद्रों के विरुद्ध शिकायतें आने पर प्राधिकरण जाँच का आदेश दे सकता है और मानकों के उल्लंघन की स्थिति में उनके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। हाँ, ऐसा स्वास्थ्य केंद्र प्राधिकरण के किसी आदेश के विरुद्ध तीस दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील कर सकेगा।

मानसिक स्वास्थ्य पुनरीक्षण बोर्ड (Mental Health Review Board)

राज्य स्वास्थ्य मानसिक प्राधिकरण प्रत्येक ज़िले अथवा ज़िला समूहों में मानसिक स्वास्थ्य पुनरीक्षण बोर्ड की स्थापना करेगा। बोर्ड एक ज़िले में स्थापित किया जाएगा अथवा ज़िला समूह में, इसका फैसला केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित मानदंडों के अनुसार किया जाएगा। यह मानदंड निम्नवत होंगे :--

1. वास्तविक कार्य के आधार पर।
2. राज्य में कितने मानसिक स्वास्थ्य केंद्र चल रहे हैं?
3. ज़िले में कितनी जनसंख्या है?
4. ज़िले में मानसिक रोगियों की संख्या कितनी है?
5. ज़िले की भौगोलिक एवं जलवायु संबंधी स्थिति क्या है?

प्रत्येक पुनरीक्षण बोर्ड में एक अध्यक्ष होगा जिसकी नियुक्ति ऐसे व्यक्तियों में से की जा सकेगी जो ज़िला न्यायाधीश हो अथवा राज्य न्यायिक सेवा का कोई अधिकारी हो अथवा कोई सेवा-निवृत्त ज़िला न्यायाधीश हो। इसके अलावा इस बोर्ड के पाँच सदस्य होंगे :

1. जिला कलेक्टर अथवा ज़िला मजिस्ट्रेट अथवा ज़िले के आयुक्त का एक प्रतिनिधि।
2. दो अन्य सदस्य, जिसमें से एक मनोचिकित्सक होगा और दूसरा चिकित्सक;
3. दो और सदस्य होंगे जो मानसिक रोगी या सेवा प्रदाता के प्रतिनिधि होंगे अथवा मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में कार्यरत् स्वैच्छिक संस्थान के प्रतिनिधि होंगे।

अध्यक्ष और सदस्यों का कार्यकाल पाँच वर्ष का होगा अथवा वह अपने पदों पर 70 वर्ष की आयु तक कार्य कर सकेंगे।

इनकी नियुक्ति राज्य मानसिक प्राधिकरण द्वारा की जाएगी। बोर्ड द्वारा फैसले सर्व-सम्मति से किए जाएँगे। यदि ऐसा न हो सके तो बहुसंख्यक सदस्यों के मतदान से फैसला मान्य होगा और मतदान बराबर संख्या में हो तो अध्यक्ष उसमें अपना निर्णायक फैसला दे सकता है। गण पूर्ति तीन सदस्यों की मानी जाएगी।

इस बोर्ड में कोई भी मानसिक रोगी अथवा उसके द्वारा नामांकित प्रतिनिधि अथवा मानसिक रोगी की सहमति से पंजीकृत स्वैच्छिक संस्थान का कोई प्रतिनिधि किसी मानसिक स्वास्थ्य केंद्र के किसी फैसले के विरुद्ध आवेदन कर सकता है अथवा इस क़ानून के अंतर्गत मानसिक रोगी को प्राप्त अधिकारों के उल्लंघन होने पर बोर्ड में आवेदन किया जा सकता है। इस आवेदन को फाइल करने में किसी प्रकार की फ़ीस नहीं होगी। बोर्ड को आवेदन पर 90 दिन के भीतर फैसला देना होगा। बोर्ड में चलने वाली हर कार्यवाही भारतीय दंड संहिता की संबद्ध धाराओं के अंतर्गत न्यायिक होगी। यह कार्यवाही गुप्त ढंग से चलाई जाएगी। बोर्ड के फैसले के विरुद्ध 30 दिन के भीतर उच्च न्यायालय में अपील की जा सकती है।

बोर्ड अग्रिम निर्देशों का पंजीकरण करेगा, उनका पुनरीक्षण करेगा, उसमें परिवर्तन करेगा और उन्हें रद्द भी कर सकता है। वह नामित प्रतिनिधि की नियुक्त भी करेगा। देखभाल एवं उपचार में कमी के मामलों में शिकायतों पर निर्णय भी देगा।

पुलिस के दायित्व

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 की धारा 100 भी स्वयं में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पुलिस अधिकारियों के दायित्वों को व्यापक आधार पर बताया गया है। प्रत्येक पुलिस स्टेशन के प्रभारी की यह ज़िम्मेदारी होगी कि यदि उसके क्षेत्राधिकार में कोई व्यक्ति बेमतलब घूम रहा है और उसे लगे कि वह व्यक्ति मानसिक रोग से पीड़ित है और वह अपना स्वयं ध्यान नहीं रख सकता और उसका ऐसे घूमना उसके अपने लिए तथा अन्यों के लिए ख़तरनाक हो सकता है। तो उसे वह अपनी सुरक्षा

में ले सकता है। ऐसा करने पर पुलिस अधिकारी उसे अथवा उसके प्रतिनिधि को सूचित करेगा कि उसे अभिरक्षा में क्यों रखा गया है। उस व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर समीप के किसी मानसिक स्वास्थ्य केंद्र में ले जाएगा ताकि उसके मानसिक स्वास्थ्य के बारे में सही वस्तुःस्थिति का पता लग सके। वहाँ का चिकित्सा अधिकारी प्रभारी उसके लिए उपयुक्त देखभाल या उपचार की व्यवस्था करेगा। यदि चिकित्सा केंद्र का यह समाधान हो जाता है कि उस व्यक्ति को कोई मानसिक रोग नहीं है और उसे उस केंद्र में दाख़िले की ज़रूरत नहीं है तो पुलिस अधिकारी उसे उसके आवास पर छोड़ देगा और अगर उस व्यक्ति का कोई घर नहीं होगा तो पुलिस उसे किसी सरकारी केंद्र में छोड़ेगी।

प्रत्येक पुलिस स्टेशन के प्रभारी का यह भी दायित्व होगा कि अगर कहीं किसी मानसिक रोगी के साथ बुरा बर्ताव किया जा रहा है या उसकी उपेक्षा की जा रही है तो पुलिस अधिकारी ऐसे व्यक्ति के बारे में उस इलाके के मजिस्ट्रेट को सूचित करेगा और मजिस्ट्रेट उस बारे में उचित कार्यवाही करेगा।

इस क़ानून में यह भी कहा गया है कि मानसिक रोग से ग्रस्त किसी अव्यस्क व्यक्ति का बिजली के झटकों से इलाज नहीं किया जाएगा। वयस्क के उपचार के लिए अगर बिजली के झटके लगाने की ज़रूरत हो तो उसके लिए मानसिक रोगी को स्नायु शिथिल करने वाली दवाएँ दे कर ऐसा किया जाएगा अथवा उसे बेहोशी की दवा दे कर उसका उपचार किया जाएगा। मानसिक रोगियों को कभी भी बेड़ियाँ या जंज़ीर नहीं पहनाई जाएगी और किसी भी हालत में अकेला नहीं छोड़ा जाएगा। मानसिक रोगियों का अब चिकित्सा बीमा भी करवाया जा सकेगा।

मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 के एक नज़र में इस अध्ययन से पता चलता है कि यह क़ानून वस्तुतः मानसिक रोगी एवं उसके सेवा प्रदाताओं के प्रति एक मानवीय आधार अपनाता है। यदि इस क़ानून के प्रावधानों का सही अर्थों में कार्यान्वयन किया जाएगा तो इससे मानसिक रोगियों का जीवन काफी सुलभ हो सकता है और ऐसे अभागे लोग अपना जीवन गरिमा से जी सकेंगे।

❑

संदर्भ

1. मासिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017
2. मासिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 1987
3. हिंदुस्तान टाइम्स, 13 सितंबर, 2018

डॉ. श्रीमती राजेश जैन

भारत में महिला सुरक्षा का प्रश्न एवं क़ानून

भारत में महिलाओं की सुरक्षा का मुद्दा एक बेहद महत्त्वपूर्ण विषय है। वास्तव में आज देश में महिला सुरक्षा एक चुनौती बनकर रह गई है। पिछले कुछ वर्षों में महिलाओं के प्रति बढ़ते अत्याचारों से देश और समाज बहुत ही चिंतित है क्योंकि भारत में महिला सुरक्षा का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। मध्यकालीन युग से लेकर 21वीं सदी तक महिलाओं की प्रतिष्ठा में लगातार गिरावट देखी गई है। आज की महिला बिल्कुल भी सुरक्षित नहीं है, चाहे वह नारी ऑफिस में काम करने वाली या घर में रहने वाली या अपनी पढ़ाई के लिए घर से बाहर रहने वाली हो, इनमें से कोई महिला सुरक्षित नहीं है आखिर ऐसा क्यों?[1]

शोध की परिकल्पना : शोध की मूल परिकल्पना यह है कि आज के इस पुरुष प्रधान देश में प्रत्येक स्तर पर महिलाओं का शोषण क्यों किया जाता, उसके क्या कारण है तथा ऐसे उपायों की खोज करना है जिससे महिलाओं को सुरक्षा प्राप्त हो सके तथा ऐसे कठोर नियम बनाए जाएँ जो महिलाओं के हित में हो।

समंक संकलन : शोधकर्ता द्वारा आँकड़ों को एकत्रित करने के लिए प्राथमिक एवं द्वितीय समंक स्रोत का उपयोग किया है। प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया गया तथा द्वितीय स्रोतों के अंतर्गत पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकालय, अभिलेख, इंटरनेट आदि विधियों का उपयोग कर विश्लेषण निष्कर्ष निकालकर उपायों की खोज की गई है ताकि नारी का सम्मान हो सके।

हम सभी जानते हैं कि हमारा देश हिंदुस्तान संपूर्ण विश्व में अपनी अलग रीति-रिवाज तथा संस्कृति के लिए प्रसिद्ध है। भारत में प्राचीन काल से ही यह परंपरा रही है कि यहाँ महिलाओं को समाज में विशिष्ट आदर एवं सम्मान दिया जाता है। भारतीय संस्कृति में महिलाओं को देवी लक्ष्मी का दर्जा दिया गया है। हमारी संस्कृति में महिला परिवार एवं समाज की अस्मिता है। वैदिक भारत में नारी का स्थान पूजनीय एवं सम्मानित था, परंतु आज पुरुष प्रधान समाज में नारी को अपने सम्मान तथा सुरक्षा हेतु सदैव पुरुषों

पर आश्रित माना जा रहा है। बचपन से पुत्री के रूप में पिता पर आश्रित, युवावस्था में पत्नी के रूप में पति पर आश्रित और वृद्धावस्था में माँ के रूप में पुत्र पर आश्रित रही है। परंतु आज के आधुनिक युग में जहाँ स्त्री आर्थिक रूप से स्वावलंबी हो चुकी है और प्रत्येक कार्य क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है चाहे वह राजनीति, बैंक, विद्यालय, खेल, पुलिस, रक्षा क्षेत्र या आसमान में उड़ने की अभिलाषा हो। इन सबके बावजूद भी आज महिला सुरक्षित नहीं है भारत में गुज़रते एक-एक पल में महिला का हर स्वरूप शोषित हो रहा है। फिर चाहे वह माँ हो, बहिन हो या पत्नी हो या 5-7 साल की छोटी बच्ची या 7 माह की बच्ची ही क्यों न हो। हर जगह नाबालिग़ लड़कियों से छेड़छाड़ की जाती है, उन्हें परेशान किया जा रहा है। सड़कें, सार्वजनिक स्थल, रेल, बस आदि असामाजिक एवं अपराधी तत्त्वों के अड्डे बन गए हैं। स्कूल और कॉलेज जाने वाली छात्राएँ भय के साये में जी रही हैं। राह चलती लड़कियों पर तेज़ाब फेंकना और शारीरिक संबंध की इच्छा को पूरा करने के लिए किसी का भी अपहरण करना आम बात हो गई। आँकड़ों के अनुसार भारत में हर 20 मिनिट में एक औरत से बलात्कार होता है। ग्रामीणों क्षेत्रों में तो और भी बुरे हालात हैं। 16 दिसंबर, 2012 में घटित निर्भया कांड ने और अप्रैल 2018 में चार माह की बच्ची से बलात्कार कांड ने पूरे देश और समाज को झकझोर के रख दिया उसे कौन भूल सकता है। देश की कुल जनसंख्या में आधी आबादी महिलाओं की है और वे देश के विकास में भी आधी भागीदारी रखती है। उसके बावजूद 21वीं सदी में भारत में ऐसी घटनाओं का होना हमारी संस्कृति को धूमिल एवं नष्ट कर रही है।[2] एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में रोज़ाना 55 बच्चियों के साथ प्रतिदिन दुष्कर्म हो रहा है। सन् 2016 के आँकड़ों के अनुसार बाल-यौन-उत्पीड़न के एक लाख मामले लंबित हैं। सन् 2013 से 2016 के बीच 84 प्रतिशत अपराध बच्चों के ख़िलाफ़ बढ़े हैं। सन् 2016 में 34 प्रतिशत बाल-यौन-उत्पीड़न के मामले दर्ज हुए। सन् 2016 में कुल मिलाकर 36,657 मामले बच्चियों और महिलाओं के साथ दुष्कर्म के दर्ज हैं इनमें 34,650 यानी 94 प्रतिशत आरोपी पीड़ित महिलाओं के परिचित या रिश्तेदार ही हैं। अतः आज अगर इन बेटियों और महिलाओं की सुरक्षा नहीं की गई तो इस देश की संस्कृति पूरी तरह नष्ट हो जाएगी। इसलिए इन समस्याओं का निराकरण करना अत्यावश्यक है।

हमारे देश के बुद्धिजीवियों एवं नीति निर्माताओं ने देश के विकास के लिए बहुत-सी योजनाएँ बनाई परंतु नारी की ओर देखने की पुरुष की दृष्टि पर कभी चिंतन नहीं किया है। आज देश में महिलाओं की सुरक्षा एक गंभीर समस्या क्यों बनी हुई है? क्या भारत के इतने बुरे दिन आ गए है कि हम देशवासी मिलकर अपनी बेटियों की रक्षा नहीं कर सकते। माँ दुर्गा, माँ काली को पूजने वाले देश में नारी का ये अपमान क्या देश एवं समाज और माँ का अपमान नहीं है? क्यों आज हम मिलकर नारी को सुरक्षित वातावरण नहीं

दे पा रहे हैं? क्यों आज देश में बेटियों को एक नज़र से नहीं देखा जाता है? ज़रा सोचिए यह दोष किसका है? आपका?, हमारा?, समाज का, या उन लड़कियों का जो उड़ना चाहती है, कुछ बनना चाहती हैं? क्यों आज भी कुछ लोग अपनी सीमित सोच के दायरे से बाहर नहीं आ रहे हैं जो किसी न किसी रूप में बेटियों की स्वतंत्रता और उनका स्वाभिमान बर्दाश्त नहीं कर पा रहे हैं तथा इस देश एवं समाज को दीमक की तरह खाये जा रहा है आख़िर क्यों सरकार के इतने प्रयासों के बाद भी ये कुकृत्य रुकने का नाम ही नहीं ले रहे हैं एक किस्से पर मरहम नहीं लग पाता कि दूसरा किस्सा हमारे देश की शान पर कालिख़ मलने को तैयार हो जाता है।[3]

अतः यदि देखा जाए तो पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली के अंदर महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध ने सारी हदे पार कर दी हैं। अगर आँकड़ों पर भरोसा किया जाए तो यही ज्ञात होता है कि एक साल में हर तीन में से दो महिलाएँ यौन उत्पीड़न का शिकार होती है। दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण में पाया गया कि औसतन 100 में से 80 महिलाएँ अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित है। वे अपने आपको असुरक्षित महसूस करती है, भयभीत रहती है। प्रत्येक परिवार के लिए उनकी महिला एवं बेटियों की सुरक्षा, चिंता का मुद्दा बन चुका है। इसलिए सरकार द्वारा महिलाओं की सुरक्षा के लिए अनेक कठोर क़ानून बनाए गए जिसमें महिला-उत्पीड़न एवं हिंसा संरक्षण क़ानून, 23 अप्रैल 2018 को मासूमों से दुष्कर्म पर मौत की सज़ा का अध्यादेश पारित होना एवं जस्टिस वर्मा समिति की रिपोर्ट आदि प्रमुख है।

इस प्रकार सुरक्षा एक बुनियादी मानव अधिकार है जो प्रत्येक महिला एवं बेटी को मिलना चाहिए। हमारे समाज में महिलाएँ शिक्षित होने के बावजूद भी अपने क़ानूनी अधिकारों से अनभिज्ञ है। अतः महिलाओं को भी भारतीय क़ानून द्वारा दिए गए अधिकारों के प्रति जागरूक होना चाहिए।[4]

भारतीय क़ानून द्वारा महिलाओं को दिए गए अधिकार :–

1. समान वेतन का अधिकार
2. काम पर हुए उत्पीड़न के ख़िलाफ़ अधिकार
3. नाम न छापने का अधिकार
4. घरेलू हिंसा के ख़िलाफ़ अधिकार
5. कन्या-भ्रूण-हत्या के ख़िलाफ़ अधिकार
6. गरिमा और शालीनता के लिए अधिकार
7. निःशुल्क क़ानूनी सहायता का अधिकार
8. संपत्ति पर अधिकार

9. मातृत्व संबंधी लाभ के लिए अधिकार
10. रात्रि में गिरफ़्तार न होने का अधिकार आदि।[5]

जस्टिस वर्मा समिति की रिपोर्ट 16 दिसंबर, 2012 में दिल्ली में चलती बस में लड़की के साथ हुए बर्बरतापूर्ण बलात्कार की घटना ने पूरे देश को झकझोर दिया था। इस घटना की सर्वत्र निंदा हुई और सरकार ने इन घटनाओं की पुनरावृत्ति रोकने के लिए पूर्व न्यायाधीश जे.एस. वर्मा की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई जिसने दिनांक 23 जनवरी, 2013 को लगभग 630 पृष्ठों की अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इस समिति ने बलात्कार, यौन उत्पीड़न, पीड़ितों का चिकित्सकीय परीक्षण, पुलिस निर्वाचन तथा शैक्षणिक सुधारों आदि पर व्यापक सुझाव प्रस्तुत किए जो निम्नलिखित हैं --

1. आपराधिक मामले में अदालत के संज्ञान लेते ही आरोपी के चुनाव लड़ने पर रोक लगे।
2. दुष्कर्म के आरोपी को सशस्त्र बल विशेषाधिकार क़ानून के तहत सुरक्षा न दी जाए।
3. आरोपी के ख़िलाफ़ कार्यवाही के लिए सरकार से पूर्व अनुमति आवश्यक न हो।
4. अपराध क़ानून संशोधन विधेयक 2012 में यौन उत्पीड़न (सेक्सुअल असॉल्ट) की जगह पहले से मौजूद दुष्कर्म (रेप) शब्द का प्रयोग किया जाए।
5. छेड़खानी एवं दुष्कर्म के मामले में एफ.आई.आर. नहीं करने वाले अधिकारी के लिए पाँच वर्ष तक की सज़ा का प्रावधान किया जाए।
6. दुष्कर्म की परिभाषा में संशोधन कर अप्राकृतिक यौनाचार को भी शामिल किया जाए।
7. दुष्कर्म की सज़ा सात वर्ष की जगह उम्र क़ैद की जाए तथा पीड़िता को मुआवज़ा मिले।
8. दुष्कर्म में मौत या मौत की स्थिति तक पहुँचने पर कम से कम 20 वर्ष या जीवनपर्यंत जेल की सज़ा हो।
9. नाबालिग से दुष्कर्म की स्थिति में 10 वर्ष से उम्रक़ैद तक की सज़ा हो।
10. सामूहिक दुष्कर्म की नई धारा बनाकर 20 वर्ष से जीवनपर्यंत क़ैद की सज़ा और मुआवज़ा।
11. सुरक्षा का दायित्व निभाने में नाकामी की वजह से दुष्कर्म की स्थिति में ज़िम्मेदार अधिकारियों को सात से 10 वर्ष की सज़ा हो।
12. महिलाओं के साथ अश्लील हरकतें करने पर एक वर्ष की सज़ा, शारीरिक छेड़छाड़ करने पर पाँच वर्ष, महिला का पीछा करने के लिए एक से तीन वर्ष की तथा महिला के वस्त्रों के साथ छेड़छाड़ करने पर एक से सात वर्ष की सज़ा का प्रस्ताव समिति ने किया है।

13. इंटरनेट पर जासूसी करने पर एक वर्ष की सज़ा हो।
14. पुलिस के ढाँचे एवं कार्य संस्कृति में सुधार हो।
15. यौन-उत्पीड़न से जुड़े मामलों की सुनवाई महिला जज ही करें।
16. संघर्षरत् क्षेत्रों में महिला यौन उत्पीड़न की शिकायतों के निपटारे के लिए विशेष आयुक्त नियुक्त हो।
17. हर जिलाधिकारी को अपने इलाके के लापता बच्चों की भी गणना करनी चाहिए।

इस प्रकार जस्टिस वर्मा समिति ने रेप और महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अन्य अपराधों के लिए क़ानून के प्रावधान कड़े करने की आवश्यकताएँ बतायी हैं।

भारत सरकार ने जस्टिस वर्मा समिति रिपोर्ट के आधार पर अध्यादेश जारी किया जिसे बाद में संसद में मंजूरी मिल गई। इसलिए अब महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों को रोकने हेतु कड़े क़ानून बन चुके हैं। पुलिस भी इन अपराधों को रोकने हेतु कड़े क़दम उठा रही है कई सामाजिक संगठन भी इस पर काम कर रहे हैं। परंतु इस विषय में हमें आशातीत सफलता प्राप्त नहीं हो पा रही है और महिलाओं के प्रति अपराधों की संख्या में वृद्धि हो रही है।[6]

मासूमों से दुष्कर्म पर मौत की सज़ा के संबंध में अध्यादेश

भारत सरकार ने 22 अप्रैल, 2018 को देश में मासूमों से दुष्कर्म के दोषियों को मौत की सज़ा देने के प्रावधान वाले अध्यादेश को पारित कर दिया है। इस संबंध में केंद्र ने अधिसूचना भी जारी कर दी। अब यह अध्यादेश लागू हो गया है, इसमें 12 साल तक के बच्चों से दुष्कर्म करने वाले दोषियों को मौत की सज़ा का प्रावधान किया है। इस अध्यादेश में निम्नलिखित प्रावधान रखे गए हैं --

1. 12 साल तक की बच्चियों से दुष्कर्म के दोषी को कम से कम 20 साल उम्रक़ैद और मौत की सज़ा दी जाएगी।
2. 12 साल तक की बच्चियों से सामूहिक दुष्कर्म के दोषी को कम से कम उम्रक़ैद या मौत।
3. 16 साल तक की लड़की से सामूहिक दुष्कर्म पर उम्रक़ैद की सजा।
4. 16 साल तक की लड़की से दुष्कर्म पर कम से कम 20 साल की सजा।
5. 16 साल की लड़की से दुष्कर्म के आरोपियों को अग्रिम ज़मानत नहीं।
6. आरोपी की ज़मानत अर्ज़ी पर सुनवाई से 15 दिन पहले अभियोजक और पीड़िता एवं उसके परिजन को सूचना देना कोई जवाबदेही।
7. नाबालिग़ों से दुष्कर्म के केस में फास्ट-ट्रैक कोर्ट बनेगी।
8. दुष्कर्म केस की जाँच 2 माह में पूरी करनी होगी।

9. छह महीने के भीतर अपील का निपटारा करना होगा।
10. पूरा मामला कुल 10 महीने में निपटाना अनिवार्य।

नियमों के अनुसार राष्ट्रपति की मंजूरी और अधिसूचना जारी होने के बाद अध्यादेश लागू हो जाता है। क़ानून बनाने के लिए छह माह के भीतर इसे संसद में पारित करना ज़रूरी होगा। यह अध्यादेश 22 अप्रैल, 2018 से होने वाले अपराधों पर लागू होगा अर्थात् कठुआ उन्नाव और सूरत पर पुराने क़ानून के अनुसार ही सज़ा होगी लेकिन जम्मू-कश्मीर के कठुआ, गुजरात के सूरत और उत्तर प्रदेश के उन्नाव में पिछले दिनों दुष्कर्म की घटना के बाद ऐसे आरोपियों को बड़ी सज़ा देने की माँग को लेकर देश भर में आवाज़ बुलंद हो रही है।[7]

संक्षेप में, भारतीय महिलाओं की सुरक्षा हेतु अनेक क़ानून पारित हुए हैं। अगर इन क़ानूनों का कड़ाई से पालन किया होता तो भारत में महिलाओं के साथ भेद-भाव, अत्याचार एवं दुष्कर्म अब तक ख़त्म हो जाना चाहिए था लेकिन पुरुष प्रधान मानसिकता के चलते यह संभव नहीं हो पा रहा है। भारतीय संविधान के कई प्रावधान विशेषकर महिलाओं के लिए बनाए है जिनमें अनुच्छेद 14, 15, 19, 21, 23, 24, 31 आदि उल्लेखनीय है।[8]

वास्तव में महिला सुरक्षा के लिए स्वयं महिला को सक्षम होना होगा। उसे हिम्मत, वीरता और साहस इत्यादि अपने महत्त्वपूर्ण गुण बनाने होंगे। कारण, जो डरता है दुनिया उसे डराती है।

महिला सुरक्षा से संबंधित कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव

1. सामाजिक स्तर पर सोच में बदलाव करना चाहिए। महिलाओं की ओर देखने की पुरुष की दृष्टि में परिवर्तन आना चाहिए। पुरुषों को महिलाओं का सम्मान, आदर करते हुए एक अच्छी सोच अपनानी होगी।
2. पुरुषों की विकृत मानसिकता को समाप्त करने हेतु प्रयास किए जाने चाहिए। उनके इलाज की प्रक्रिया जन्म से ही प्रारंभ की जानी चाहिए।
3. महिलाओं को आत्मरक्षा करने की तकनीक सिखानी चाहिए, उसके मनोबल को भी ऊँचा करने का प्रयास करना चाहिए ताकि महिलाओं को विपरीत परिस्थितियों का सामना करने में किसी तरह की परेशानी महसूस न हो।
4. महिलाओं को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वे किसी भी अनजान पुरुष के साथ अकेले में कहीं न जाएँ। ऐसे हालात में उन्हें अपने आपको दूर ही रखना चाहिए।
5. महिलाओं को कभी भी अपने आपको पुरुषों से कम नहीं समझना चाहिए फिर चाहे वह मानसिक क्षमता की बात हो या फिर शारीरिक बल की बात हो।
6. अक्सर देखा गया है कि महिलाएँ स्थिति की गंभीरता को किसी भी पुरुष की बजाय जल्दी भांप लेती है। अगर उन्हें किसी तरह की गड़बड़ी की आशंका लगती है तो

उन्हें जल्दी ही कोई ठोस क़दम उठा लेना चाहिए।

7. महिलाओं को घर से बाहर जाते वक्त हमेशा अपने साथ मिर्च स्प्रे करने का यंत्र, पेपर स्प्रे या कोई नुकीली चीज़ आदि अपने साथ रखनी चाहिए।

अतः महिला सुरक्षा एक सामाजिक समस्या है इसे जल्दी से जल्दी सुलझाने की ज़रूरत है। अतः आज आवश्यकता है जन-चेतना की, महिलाओं की असुरक्षा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने की क्योंकि अगर आज हम अपनी ज़िम्मेदारी न समझकर पीछे हटेंगे तो देश में नारियों का सम्मान वापिस ला पाना नामुमकिन हो जाएगा। इसके अतिरिक्त, यदि हम महिलाओं और लड़कियों को आने वाले समय में सुरक्षित रखना चाहते हैं तो हमें एक बदलाव लाने की ज़रूरत है और वह है पुरुषों की मानसिकता में बदलाव। उनको ग़लत नज़रिये से न देखते हुए अपनी माँ, बहिन और बेटी के रूप में देखना चाहिए और इस बात को समझना चाहिए कि आज आप जो भी है, जहाँ पर भी है सिर्फ़ और सिर्फ़ नारी की वजह से ही है। नारी हमारे घर की लाज है, हमारे देश की शान है, नारी घर की लक्ष्मी है, नारी देवी का अवतार है। इसलिए नारी की सुरक्षा के लिए हमें लड़ना चाहिए, उसका सम्मान करना चाहिए। यह कार्य सिर्फ़ सरकार का नहीं है हम सभी भारतवासियों का है। महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराधों को रोकने में हम तभी सफल हो सकेंगे जब हम दिग्भ्रमित युवकों को अपनी संस्कृति और परंपरा से अवगत करा पाएँ। सरकार के प्रयास भी तभी सफल हो पाएँगे जब हमारे समाज में महिलाओं के सम्मान के प्रति एक सकारात्मक वातावरण तैयार हो।

❑

संदर्भ

1. मेरी आवाज़ पत्रिका, नारी सुरक्षा एक चुनौती, नई दिल्ली दिसम्बर, 2013
2. प्रतियोगिता दर्पण, जून 2013, आगरा, पृ. 1716
3. मध्य भारती शोध पत्रिका, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर, जुलाई-दिसंबर, 2015, पृ.77
4. महिला बाल विकास मंत्रालय की रिपोर्ट, भारत सरकार, 2017
5. कम्पीटिशन सक्सेस रिव्यू, मार्च 2013, नई दिल्ली
6. जस्टिस जे.एस. वर्मा समिति की रिपोर्ट, 23 जनवरी, 2013
7. दैनिक भास्कर भोपाल, 23 अप्रैल 2018, मुख्य पृष्ठ एवं पृष्ठ 9
8. बेव दुनिया पर महिलाओं के लिए बने क़ानून, नामक लेख

बी.एल. गौड़

ये मेरा देश है प्यारे

ये मेरा देश है प्यारे
ये तेरा देश है प्यारे
कहीं मंदिर कहीं मस्जिद
कहीं हैं पाक गुरूद्वारे ।
यहाँ हर धर्म के मानव
परस्पर प्रेम पलता है
यहाँ पर कर्म का दर्शन
कर्म के बिन विफलता है
जीवन की नहीं चिंता
ये छोटा हो कि लंबा हो
हमें विश्वास सदियों से
दुबारा जन्म मिलता है
हमारा देश है सबका
ये जग से है अलग प्यारे।
ये मेरा देश है प्यारे

मगर कुछ धर्म के अंधे :
लिए हाथों में कुछ झंडे
बनाकर टिड्डी दल चलते
फँसा झंडों में ये डंडे
है जिनकी आस्था अँधी
कि जिनका धर्म दर्पण-सा
किसी के प्रश्न से पल में
धरा पर टूट कर गिरता
कि ये हैं देश के दुश्मन
कि इनके खेल हैं न्यारे
ये मेरा देश है प्यारे।।

❑

सूरज से बहुत पहले

हर रोज उठ जाता हूँ मैं
जब तक उसके अश्व
सजते हैं सँवरते हैं
उससे पहले ही
घर से निकल जाता हूँ मैं।
चंद लम्हों में
पार कर नदियाँ समन्दर
ढूँढ़ता हूँ मैं
फिर वही खोई डगर
जो मुझे ले जाएगी
उस गाँव तक
जहाँ पर आज भी
निर्जन खड़ा है एक जर्जर घर
जिसके बीच आँगन में धरे हैं
यादों के कई गड्डर
नहीं है शेष कुछ भी

अब वहाँ
बूढ़े बुजुर्गों की तरह गर्दन झुकाए
ओढकर चादर उदासी की
बहुत चुपचाप हैं
नीम पीपल और बड़
बस उन्हें छू कर
थके हारे मुसाफिर-सा
लौट घर आता हूँ मैं।

फिर इक पहर के बाद
बिन कोई पदचाप
धीरे से उतरती शाम आँगन में
चंद घड़ियों बाद
कच्ची नींद से जगकर
देखता हूँ मैं --
दूर अँधियारी सुरंग के पार
एक दीया टिमटिमाता है
जिसकी लपलपाती लौ बताती है
ज़िंदा रहने के लिए
जद्दोजहद
कितनी ज़रूरी है
इस तरह के हादसों से
रूबरू होता हुआ
जाने कब सो जाता हूँ मैं।

❑

तीन कविताएँ

प्रो. सुरिंदर मोहन धवन

चीख चुलबुली

कभी-कभी मेरा मन चाहे
जा पहुँचूँ मैं किसी शाम को
नज़दीक के किसी मयखाने
जाम चढाऊँ, ढोले गाऊँ
फिर संसद के प्राँगण में
जा बुलबली चीख लगाऊँ
गांधी की प्रतिमा तक जा कर
इंकलाब का नारा लगाऊँ
बोलूँ धन्य है वह जननी
जन्मा जिसने वीर भगत सिंह
सुन ललकार बाहर आए दुश्मन
छीन बापू के हाथ की लाठी
उन साँपों को मजा चखाऊँ
खा अन्याय के हाथों गोली
लहुलूहान हो गिर जाऊँ
गांधी जी के चरणों पर
अंतिम साँस लेने से पहले
एक दो बार राम पुकारूँ
विषधर-सा मैं फुफकार लगाऊँ
विषधर-सा फुफकार लगाऊँ।।

❑

डॉ. उषा देव

'भारत रत्न' पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी जी को जन-जन का कोटिशः नमन

यह तो शाश्वत सत्य है ही कि 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृत्यस्य च (गीता 2.27) अर्थात् जिसने जन्म लिया है उसकी मृत्यु निश्चित है और मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म भी निश्चित है। शरीर मरणधर्मा है और आत्मा अजर-अमर, नित्य एवं अनश्वर है। गीता में श्रीकृष्ण जी ने इस तथ्य को अन्य शब्दों में स्पष्ट करते हुए कहा है--

''अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना।।''

अर्थात् जीव प्रारंभ में अव्यक्त रहते हैं। मध्य अवस्था में व्यस्त होते हैं और विनष्ट होने पर पुनः अव्यक्त हो जाते हैं। अतः शोक करने की क्या आवश्यकता है। (गीता 2.28)

16 अगस्त, 2018 (बृहस्पतिवार) को 92वें वर्ष की मानव-जीवन की लगभग पूर्णायु को भोग कर श्रद्धेय पूर्व प्रधान मंत्री अटल जी की सनातन आत्मा अनंत यात्रा पर चली गई। श्रुति कहती है --

''कुर्वन्नेवेह कर्माणि र्जिजीविषेच्छतं समाः।'' (ईशोपनिषद्, 2 अ)

वास्तव में ही उनकी कर्म-निष्ठा श्लाघनीय है। 1942 में उन्होंने महात्मा गाँधी जी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भाग लिया था और 23 दिन जेल में भी रहे। 1951 में वे जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में से एक थे। राजनीति से उनका जुड़ाव 1957 से आरंभ हुआ। वे बलरामपुर से लोक सभा सदस्य रहे और 1968-1973 तक जनसंघ के अध्यक्ष बने। सच में, वे भारतीय राजनीति के 'अजातशत्रु' थे। उन्होंने लगभग पाँच दशक का संसदीय जीवन बिताने के बाद 2005 में चुनावी राजनीति से संन्यास ले लिया।

1977 में जब वे मोरारजी देसाई की 'जनता सरकार' के विदेशी मंत्री थे तो 4 अक्तूबर, 1977 को संयुक्त राष्ट्र में उन्होंने अपनी मातृभाषा हिंदी में भाषण दिया। संयुक्त राष्ट्र

संघ में यह हिंदी का प्रथम प्रवेश था जिसके कारण निःसंदेह प्रत्येक देशवासी का सिर ऊँचा उठ गया।

1980 में 'भारतीय जनता पार्टी' का गठन हुआ और अटल जी इसके संस्थापक अध्यक्ष बने। पहली बार 1996 में बीजेपी सरकार बनी और अटल जी प्रधानमंत्री बने; पर तेरह ही दिन में उनकी सरकार गिर गई तब भी उनके मुखमंडल पर कोई शिकन मात्र भी नहीं थी। पुनः 1998 में उन्होंने 13 माह तक प्रधान मंत्री पद को सुशोभित किया। तीसरी बार 1998 में जब वे प्रधान मंत्री बने तो उन्होंने पाँच वर्ष का कार्यकाल पूर्ण किया।

अटल जी अतुलनीय इस अर्थ में भी थे कि वे सदैव राष्ट्रहित को पार्टी की विचारधारा से ऊपर मानते थे। यही मुख्य कारण है कि विपक्ष के लोग भी उनके मंतव्य से सहमत हुआ करते थे। उनका मानना था कि जनता के प्रतिनिधि सांसदों को सदन-भवन में बैठ कर केवल देश-हित की बात सोचनी और करनी चाहिए।

उनकी जन-सभाओं में लोग दूर-दूर से उनके विचारों एवं भावों को सुनने के लिए उमड़ पड़ते थे। उनके बोलने का अंदाज भी बड़ा विलक्षण था। महत्त्वपूर्ण गंभीर विषय पर वे कुछ रुक-रुक कर बोलते और विकट समस्याओं को अपनी वाकूपटुता एवं हाज़िरजवाबी से हल कर देते। वे ग्यारह भाषाओं के ज्ञाता ही नहीं, भावुक कवि हृदय थे। अधिकतर संसद या जनसभाओं में जब-तब अपनी किसी एक कविता को प्रस्तुत कर उठते। उनकी एक कविता की बानगी दर्शनीय है --

''हार नहीं मानूँगा
रार नहीं ठानूँगा
काल के कपाल पर
लिखता मिटाता हूँ
गीत नया गाता हूँ।

अटल जी इंसानियत के पक्षधर थे। उनके प्रधान मंत्री काल में कश्मीर को लेकर पाकिस्तान से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ था। अलगाववादियों से बातचीत के निर्णय पर जब प्रश्नचिह्न लगा तो उन्होंने उत्तर दिया, ''बातचीत इंसानियत के दायरे में होगी।''

वे स्वप्नदृष्टा नहीं, कर्मवीर थे। 1998 में सत्ता में आने के केवल मात्र तीन महीने के अंदर ही उन्होंने पोखरण में परमाणु परीक्षण करके दुनिया में भारत की ताक़त का लोहा मनवा दिया था। दिल्ली-लाहौर के बीच चलने वाली बस भी उनकी ही देन थी। उनका तो कहना था, ''दोस्त चुने जा सकते हैं, पर पड़ोसी नहीं।'' इन कथनों में जीवन-सत्य छिपा हुआ है। इतनी ऊँची पदवी पर पहुँच कर भी वे विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। वे कहते थे, ''हे प्रभु! मुझे इतनी ऊँचाई कभी मत देना। ग़ैरों को गले न लगा सकूँ, इतनी रूखाई

कभी मत देना।'' अटल जी धर्मनिरपेक्षता के पक्षधर थे। 13 सितंबर, 1994 को पुन्हाना में 36 बिरादरियों की जन सभा में उन्होंने हिंदू-मुस्लिम सौहार्द का संदेश दिया। उन्होंने कहा था, ''जो भी नेता राष्ट्र-हित, भाईचारा, विकास, देश की एकता व अखंडता को बनाए रखने की बात करता हो, उसके साथ रहें। ऐसे लोगों से दूर रहो जो कि सांप्रदायिकता का ज़हर घोल कर एक-दूसरे को लड़ाने का घिनौना कार्य करते हैं।''

यह उनकी दूरदर्शिता ही थी कि उन्होंने अपने अभिन्न मित्र एवं सहयोगी श्री लालकृष्ण आडवाणी जी ने जब सोमनाथ से अयोध्या तक की बहुचर्चित रथ-यात्रा का जिक्र किया तब अटल जी ने चंद शब्दों में आगाह किया, ''ध्यान रखें कि आप अयोध्या जा रहे हैं, लंका नहीं।'' इसी प्रकार 2002 में गोधरा कांड के अवसर पर गुजरात के तत्कालीन मुख्य मंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी को सत्य एवं साहसपूर्ण संदेश दिया, ''मेरा एक संदेश है कि वे राजधर्म का पालन करें अर्थात् राजा या शासक के लिए प्रजा-प्रजा में भेद धर्म, संप्रदाय, जाति, जन्म आदि के आधार पर नहीं होना चाहिए।''

दिल्ली में बढ़ती आबादी को मद्देनज़र रख उन्होंने पूर्व मुख्य मंत्री श्रीमती शीला दीक्षित के सुझाव पर मेट्रो रेल ही नहीं, बिजली विभाग का भी निजीकरण स्वीकार किया। भूतपूर्व प्रधान मंत्री स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू ने उनके लिए भविष्यवाणी की थी कि वे देश के भावी नेता होंगे।

आज अपनी भावभीनी पुष्पाँजलि अर्पित करते हुए संस्कृत साहित्य के धनंजय कृत दशरूपकम् (अध्याय 2, 1-2 श्लोक) को उद्धृत करना चाहती हूँ जिनमें नेता के गुणों का वर्णन किया है। इनका अर्थ पढ़ कर आप भी मुझ से सहमत होंगे कि हमारे श्रद्धेय अटल जी में वे सब गुण पुँजीभूत थे --

''नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूपवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्धयुत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान समन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।

(अर्थात् नेता विनयवान्, मधुरभाषी, त्यागवृत्ति वाला होता है, लोकप्रिय होता है, पवित्र जीवन वाला होता है, वक्तृत्व कला में निपुण होता है, प्रतिष्ठित वंश (अर्थात् जिसके वंश में कलंकित जीवन किसी का न हो) होता है, स्थिर चित्त, युवा अर्थात् कर्मठ होता है। बुद्धि-उत्साह-स्मृति-क्षमता, प्रज्ञा, कला, सम्मान से समन्वित तथा शूरवीर होता है (जिसका उदाहरण पोखरण परमाणु परीक्षण है) दृढ़ मनस्वी, तेज़वान्, शास्त्र को प्रमाण मानने वाला तथा धर्मपरायण होता है।)

अटल जी ने स्नातकीय शिक्षा में संस्कृत विषय का अध्ययन किया था। मेरा दृढ़

विश्वास है कि उन्होंने आचार्य वदीभ सिंह रचित क्षत्रचूड़ामणि के इस श्लोक को पढ़ा ही नहीं वरन् आत्मसात् कर लिया था --

तपसा हि समं राज्यं, योगक्षेमप्रपञ्चतः।
प्रमादे सत्यधःपातादन्यथा च महोदयात्।।

(वदीय सिंह, क्षत्रचूड़ामणि, 11.8)

(अर्थात् राज्य करना तपस्या करने के समान है क्योंकि इसमें योग की कुशलता चाहिए (निरंतर आगे बढ़ते रहने के लिए सदैव सावधान रहना पड़ता है) यदि ज़रा भी प्रमाद (लापरवाही) हो जाए तो तत्काल अधःपतन हो जाता है और सावधानी रखी जाए, तो महान् अभ्युदय हो सकता है)

ऐसे विलक्षण, विशाल एवं उदार व्यक्तित्व के धनी अटल जी को हम देशवासियों की सच्ची श्रद्धांजलि यही है कि हम उनके जीवन आदर्शों को स्व-स्वजीवन में अपनाने का संकल्प करें। पुनः-पुनः दिवंगत महान् राजनीति के 'भीष्म पितामह' को कोटि-कोटि नमन।

❑

धारा 497 हटाने का अर्थ...

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति दीपक मिश्रा का कार्यकाल सितंबर, 2018 तक का था। अपनी सेवा-निवृत्ति से पहले उन्होंने जाते-जाते उन मामलों के बारे में निर्णय सुना दिए हैं इनमें न्यायपीठों का वह नेतृत्व कर रहे थे। उनकी न्यायपीठ ने धारा 377 के बारे में निर्णय दे कर एक नया इतिहास रच डाला है, इस निर्णय के अनुरूप समाज की मानसिकता को बदलने में कितना समय लगेगा, यह अभी भविष्य के गर्भ में है। उन्होंने भारतीय दंड संहिता की धारा 497 को भी असंवैधानिक घोषित कर दिया है। इस निर्णय में मुख्य बात यह कही गई है कि पति पत्नी का मालिक नहीं है। महिलाओ को गरिमापूर्ण जीवन जीने का अधिकार है।

कहा यह जा रहा है कि उच्चतम न्यायालय ने व्यभिचार को अपराध के दायरे से निकाल कर उसकी खुली छूट दे दी है। इसका समाज पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा और यह परिवारों के टूटने का सबब बनेगा। व्यभिचार को अपराध के दायरे से बाहर निकालने के पीछे माननीय उच्चतम न्यायालय की क्या सोच रही, इस पर बात करेंगे पूरे शोध के साथ अगले अंक में...

— संपादक

डॉ. प्रवेश सक्सेना

बाँध लूँ अनन्त को'

दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस के संस्कृत विभाग की वरिष्ठ प्रोफेसर (सेवा निवृत्त) डॉ. कौशल्या गुप्ता का सद्यः प्रकाशित विशिष्ट काव्य-संग्रह है 'बाँध लूँ अनन्त को'। अनंत ईश्वर की अनंत सृष्टि में सब कुछ तो अनंत है। कहीं कोई सीमा नहीं, कहीं कोई अंत नहीं। पर क्या कोई ससीम संत जन असीम व अनंत को बाँध सकता है? सामान्यजन तो नहीं, हाँ एक कवि ही ऐसी कल्पना कर सकता है और अनंत को बाँधने का प्रयास भी। प्रस्तुत पुस्तक का शीर्षक तो विशिष्ट है ही, उसका बाह्य कलेवर भी अत्यंत विशिष्ट है, रंग-बिरंगा है। भीतर के भाग को देखा जाए तो अंतर तक रंग-ही-रंग बिखरे हैं। पृष्ठ-दर-पृष्ठ हस्तलिपि में अंकित शीर्षक -- एक-एक शीर्षक के अंतर्गत लघु कविताएँ या क्षणिकाएँ अथवा डायरी लेखन के गद्यांश जो किसी कविता से कम नहीं। सुंदर पीतवर्ण के चार्ट पेपर के ज्योमितिय टुकड़ों में अंकित ये रचनाएँ और ग्लेज्ड पेपर पर छपीं ये कविताएँ प्रथम दृष्टि तो आकर्षित करती ही हैं -- पढ़ने की आतुरता बढ़ाती है। पढ़ने पर कुछ क्षण आँखें मूँदने को मन विवश हो जाता है क्योंकि ध्यान की मुद्रा में इन धीर-गंभीर रचनाओं के अनंत-अनंत अर्थ खुलते जाते हैं और पाठक आनंद-रस में डूबता जाता है।

जीवन के नवें दशक में चल रही डॉ. कौशल्या गुप्ता ने प्रकाशन को महत्व कभी दिया ही नहीं। एक आशु कवि हिंदी-संस्कृत-अंग्रेज़ी की प्रकाण्ड विदुषी की रचनाएँ या तो मित्र मंडली की गोष्ठियों में पढ़ी गईं या निकट के बंधुजनों को दूरभाष के माध्यम से सुनाई गईं। हाँ, पिछले दशक में अवश्य एक के बाद एक लगभग सात कविता संकलन प्रकाश में आए। पर इन सबमें विशिष्ट है -- प्रस्तुत ग्रंथ। कौशल्या गुप्ता की तीन डायरियों में लिखी लघु कविताएँ तथा चिंतन की गद्य लहरियाँ अप्रकाशित रह जातीं यदि उन्हें डॉ. हेमा भटनागर जैसी प्रकाशक नहीं मिल पातीं। कौशल्या जी व हेमा जी समान उम्र। समान व्यवसाय के अतिरिक्त मैत्री के रिश्ते में बँधी हुई हैं। सबसे बड़ा संबंध उन दोनों के बीच कवि-श्रोता का है, कवि-पाठक का है। मित्रता

शेष पृष्ठ 256 पर...

डॉ. हरीश कुमार सेठी

विधि क्षेत्र की हिंदी-शब्दावली की विकास यात्रा

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व अंग्रेज़ों द्वारा फारसी को प्रश्रय देने की वजह से शासन एवं विधि के क्षेत्र में अरबी-फारसी का चलन था, जिसे बाद में 1837 में समाप्त कर दिया गया। इस तरह, तब से शासन-व्यवस्था में अंग्रेज़ी भाषा के प्रयोग से विधि के क्षेत्र में भी अंग्रेज़ी का स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया जाने लगा, हालाँकि यह व्यवस्था पूरे ब्रिटिश भारत में लागू नहीं थी क्योंकि 1835 में सागर और नर्मदा कमिश्नरी में फारसी के स्थान पर हिंदी को शासन एवं विधि की भाषा रखा गया। अंग्रेज़ों की शासन-प्रणाली और इंग्लैंड में पनपी विधि एक विशेष प्रकार के निर्वचन पर आधारित थी। शासन में हिंदी के प्रयोग के अभाव के कारण विधि की संकल्पनाओं को व्यक्त करने वाली विधि शब्दावली की कमी थी। किंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हिंदी की विधि शब्दावली तैयार करने का बिल्कुल भी प्रयास नहीं किया गया।

वास्तविकता यह है कि विधि शब्दावली निर्माण के संदर्भ में काफ़ी प्रयास किए गए हैं। इस परिप्रेक्ष्य में 19वीं और 20वीं शताब्दी में किए गए प्रयास उल्लेखनीय हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रयासों को भी आज़ादी से पहले और आज़ादी के बाद के संदर्भ में देखना उपयुक्त रहेगा। आज़ादी के बाद के प्रयास भी हमें दो आयाम लिए हुए नज़र आते हैं -- व्यक्तिगत और सरकारी प्रयास। इसका कारण यह है कि आज़ादी के बाद जहाँ भारत सरकार, संसद और लोक सभा सचिवालय के स्तरों पर विधि शब्दावली निर्माण के प्रयास किए गए वहीं, 1961 में राजभाषा (विधायी) आयोग के गठन और उनके द्वारा शब्दावली निर्माण का दायित्व संभाला है। यह भी विशेष तौर पर रेखांकित करने योग्य है कि इस आयोग ने शब्दावली निर्माण की भिन्न प्रक्रिया अपनाई। इसलिए आयोग के प्रयासों का अलग से रेखांकन भी अपेक्षित है। इस प्रकार, विधि शब्दावली निर्माण संबंधी विविध प्रयासों को इन सभी कालखंडों में विभाजित करके अवलोकित करना उपयुक्त रहेगा।

(क) 19वीं शताब्दी में किए गए प्रयास : हिंदी की विधि शब्दावली के इतिहास को देखने पर ज्ञात होता है कि इसे संकलित करने के अनेक प्रयास किए गए। इस संदर्भ में आरंभिक प्रयास के रूप में हालाँकि हमें सबसे पहले 1797 में प्रकाशित 'Dictionary of Mohammadan Law, Bengal Revenue Terms, Hindoo and Other Words, Used in East India with Applications' का उल्लेख मिलता है, किंतु यह पारिभाषिक कोश लंदन से प्रकाशित हुआ था और इसमें रोमन एवं अरबी लिपियों का प्रयोग किया गया था। इसलिए हिंदी की विधि शब्दावली के इतिहास में 1853 में प्रकाशित श्री पैट्रिक कार्नेगी की 'कचहरी टेक्नीकैलिटीज एंड वोकेबुलरी ऑफ लॉ टर्म्स' का सर्वप्रथम उल्लेख किया जाता है। इस कोश में न्यायालयों में प्रयुक्त होने वाले हिंदी-उर्दू के अंग्रेज़ी पर्याय दिए गए हैं। वैसे इस शब्दावली में उर्दू शब्दों की ही बहुलता है। रोमन लिपि में लिखी इस पुस्तक को अंग्रेज़ अधिकारी-वर्ग की सहायता के लिए तैयार किया गया था। इस कोश का 1877 में द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ था।

'कचहरी टेक्नीकैलिटीज' के प्रकाशन के दो वर्ष बाद 1855 में ईस्ट इंडिया कंपनी के प्राधिकार से 'ग्लॉसरी ऑफ जुडीशियल रेवेन्यू टर्म्स' प्रकाशित हुई। इस शब्दावली की रचना ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के आचार्य एवं प्रसिद्ध विद्वान प्रो. एच.एच. विल्सन ने की थी, जो ईस्ट इंडिया कंपनी के पुस्तकालयाध्यक्ष भी थे। इस शब्दावली में हालाँकि हिंदी के अलावा संस्कृत, उर्दू, मराठी, गुजराती, बंगला आदि भारतीय भाषाओं के शब्दों के अंग्रेज़ी पर्याय भी दिए गए थे वहीं यत्र-तत्र तद्भव और देशज शब्द भी मिल जाते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य अदालतों में प्रचलित हिंदी-उर्दू शब्दों के अंग्रेज़ी पर्याय देना था ताकि अंग्रेज़ उन शब्दों का अर्थ समझ सकें।

1858 में फेलन ने 'एन अब्रिज्ड इंग्लिश-हिंदुस्तानी लॉ एंड कमर्शियल डिक्शनरी' तैयार की, जो कलकत्ता से प्रकाशित हुई थी। इसमें फ़ौजदारी, दीवानी तथा व्यवसाय के अंग्रेज़ी के शब्दों के प्रतिशब्द उर्दू में हैं, किंतु हिंदी शब्द भी हैं। वैसे इसमें उर्दू शब्द अधिक हैं। इस कोश को अंग्रेज़ों द्वारा किए गए कोश कार्य में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इसके बाद फेलन ने 1888 में 'इंगलिश-हिंदुस्तानी लॉ एंड कमर्शियल डिक्शनरी ऑफ वर्ड्स एंड फ्रेज़िज़ यूज़्ड इन सिविल एंड क्रिमिनल रिवेन्यू एंड कमर्शियल अफेयर्स' भी प्रकाशित की।

(ख) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में किए गए प्रयास : इसके बाद के प्रयासों में सर्वप्रथम 1920 में अलीगढ़ से प्रकाशित पं. ब्रजवल्लभ मिश्र कृत 'वल्लभ त्रैभाषिक विधि कोश का उल्लेख किया जा सकता है। इस कोश में उर्दू में प्रयुक्त शब्दों के हिंदी और अंग्रेज़ी पर्याय हैं। इसमें हर पृष्ठ पर तीन कॉलम हैं। प्रथम में उर्दू (फारसी-अरबी), दूसरे में हिंदी तथा

तीसरे में अंग्रेजी शब्द हैं। उदाहरण के लिए, 'इज़ारेदार -- नियमकर्तृ -- Lesse।'

'वल्लभ त्रैभाषिक विधि कोश' के बाद का इतिहास बताता है कि बड़ौदा रियासत ने 1932 में 'श्री सयाजी शासन कल्पतरु' नामक ग्रंथ का प्रकाशन किया था। यह ग्रंथ प्रो. टी.के. गज्जर की अध्यक्षता में तत्कालीन बड़ौदा नरेश महाराज सयाजी राव गायकवाड़ ने तैयार करवाया था। इस कोश की यह विशिष्टता रही कि इसमें प्रविष्टियों को दस स्तंभों में रखा गया था। इनमें से प्रथम स्तंभ में अंग्रेज़ी शब्द और उसके बाद उसके क्रमशः गुजराती, मराठी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिंदी, बांग्ला, वडोदरा में प्रचलित शब्द तथा वडोदरा के लिए प्रस्तावित मानक शब्द थे। विधि शब्दावली के अभाव को दूर करने के साथ-साथ विभिन्न भाषाओं में प्रचलित शब्दों के समावेश की दृष्टि से यह कोश ग्रंथ एक अपूर्व प्रयोग था। यह वह कोश था जिसे वैज्ञानिक रीति-नीति से तैयार किया गया था। इस ग्रंथ के अधिकांश गुजराती शब्द हिंदी के ही प्रतीत होते हैं। इसके अतिरिक्त, इस शृंखला में काशी नागरी प्रचारिणी के प्रकाशन 'कचहरी हिंदी कोश' को भी लिया जा सकता है जिसमें अरबी-फारसी की विधि शब्दावली के अंग्रेज़ी तथा हिंदी पर्याय दिए गए हैं।

इस विकासक्रम में 1938-39 में प्रकाशित श्री परमेश्वरी दयाल श्रीवास्तव की 'श्रीवास्तव लॉ डिक्शनरी' (जिसका परिवर्धित संस्करण उनके पुत्र और मध्य प्रदेश के न्यायमूर्ति शिवदयाल ने 1970 में निकाला) तथा 1940 में श्री हरिहर निवास द्विवेदी द्वारा रचित 'शासन शब्द संग्रह' को भी परिगणित किया जा सकता है जिसने विधि शब्द भंडार में अभिवृद्धि करके अपना योगदान दिया। विधि की हिंदी शब्दावली के क्षेत्र में श्री हरिहर द्विवेदी के कार्य विशेष तौर पर उल्लेखनीय हैं। वे ग्वालियर राज्य के अधिकारी थे और उन्होंने इस पद पर कार्य करते हुए राज्य के तत्कालीन सभी अधिनियमों का हिंदी में प्राधिकृत पाठ प्रकाशित किया। अधिनियमों के हिंदी अनुवाद करने का यह 'प्रथम राजकीय प्रयास' था। उनके द्वारा किए गए अनुवाद विधि और भाषा, दोनों दृष्टियों से उच्च कोटि के माने जाते हैं।

(ग) **स्वतंत्रता-पश्चात् विधि शब्दावली का विकास** : स्वतंत्रता के पश्चात् विधि शब्दावली के निर्माण में क्षेत्र में जो प्रयास किए गए, उन्हें व्यक्तिगत/सामूहिक और सरकारी प्रयासों के रूप में देखा जा सकता है। इसका कारण यह है कि आज़ादी के बाद शब्दावली और विशेष तौर पर विधि शब्दावली के विकास के लिए योजनाबद्ध तरीक़े से काम शुरू किया गया था।

(i) **व्यक्तिगत प्रयास** : जहाँ तक स्वतंत्रता के पश्चात् व्यक्तिगत प्रयासों का संबंध है, इस संदर्भ में श्री घनश्याम सिंह गुप्त की पुस्तक 'विधानसभाओं में प्रायः प्रयोग में आने वाले अंग्रेज़ी शब्दों के हिंदी पर्याय' को भी विधि-विषय के क्षेत्र में उपयोगी कोश

कहा जा सकता है। इनमें प्रायः हिंदी पर्यायों को ही स्वीकार किया गया है। इसी संदर्भ में संयुक्त प्रांत के तत्कालीन डिप्टी कलक्टर श्री रघुवर दयाल चतुर्वेदी का शब्द संग्रह 'न्यायालयों में प्रचलित कतिपय अंग्रेज़ी शब्दों के हिंदी पर्याय' का भी विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है।

इसी क्रम में स्वतंत्रता के पश्चात् विधि शब्दावली निर्माण के संदर्भ में सामने आने वाले प्रयासों में 1948 में श्री मुंशी धन्नालाल विजयवर्गीय का 'न्यायालय शब्दकोश', श्री हरिश्चंद्र सिंह और श्री जगदीश्वर सिंह का 'अंग्रेज़ी-हिंदी न्याय कोश' (1948), जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी एवं मुरलीधर के संयुक्त संपादकत्व में प्रकाशित 'विधि शब्द-सागर' (1948) रामचंद्र वर्मा तथा गोपालचंद्र सिंह का 'आरक्षिक (पुलिस) शब्दावली' (1948), और महापंडित राहुल सांकृत्यायन, विद्यानिवास मिश्र एवं प्रभाकर माचवे के संपादकत्व में प्रकाशित हिंदी साहित्य सम्मेलन की 'एडमिनिस्ट्रेटिव डिक्शनरी' (1948) कोशों का विशेष तौर पर उल्लेख किया जा सकता है। राहुल जी की 'एडमिनिस्ट्रेटिव डिक्शनरी' में व्यवस्थापिका, सचिवालय, कार्यालय एवं न्यायालय में प्रयुक्त होने वाले 16000 शब्द संग्रहीत-संकलित हैं। इसके अलावा, लछमनदास कौशल तथा रंजीत सिंह सरकारिया की 1950 में प्रकाशित 'डिक्शनरी ऑफ लॉ टर्म्स', 1956 में लखनऊ से प्रकाशित पं. चंद्रशेखर शुक्ल की 'वैधानिक शब्दावली'; 1958 में प्रकाशित श्री बेनी प्रसाद अग्रवाल का 'संक्षिप्त विधि शब्दकोश' और लखनऊ से प्रकाशित सुरेंद्रनाथ ठाकुर का 'लॉ लेक्सिकन' (1958) आदि प्रमुख हैं।

(ii) **सरकारी प्रयास :** विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी शब्दावली के अभाव की पूर्ति की दृष्टि से इन प्रयासों को श्लाघ्य माना जा सकता है। किंतु, दूसरी ओर, इस तथ्य को भी नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता है कि व्यक्तिगत एवं कुछ संस्थागत परियोजनाओं के तहत प्रकाशित विधि संबंधी कोशों के कारण पारिभाषिक शब्दावली के क्षेत्र में एकरूपता का अभाव हो गया, अराजकता की स्थिति बन गई। परिणामस्वरूप, संविधान के अनुच्छेद 351 में यह उपबंध किया गया कि हिंदी अपनी स्वाभाविक शब्दावली के साथ-साथ विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली मुख्यतः संस्कृत से तथा आवश्यकतानुसार अष्टम सूची में उल्लिखित अन्य प्रादेशिक भाषाओं से भी ग्रहण कर सकती है। इसके मूल में शब्दावली को सार्वदेशिक स्वरूप प्रदान करने का भाव निहित था। किंतु इस कार्य की विशालता को ध्यान में रखते हुए इसे सुनियोजित और संगठित स्तर पर किया जाना था। इस हेतु भारत सरकार में राष्ट्रपति के आदेशानुसार 8 जून, 1961 को राजभाषा (विधायी) आयोग गठित किया गया। यह स्थायी आयोग था।

इस राजभाषा (विधायी) आयोग ने उक्त विधि-विशेषज्ञों एवं विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के विद्वानों तथा भाषाविदों के सहयोग से विधि संबंधी पारिभाषिक शब्दों के हिंदी मानक

पर्याय निश्चित करना शुरू दिया। किंतु आयोग ने शब्दावली निर्माण की भिन्न प्रक्रिया अपनाई। इसने सीधे शब्दकोश का निर्माण न करके केंद्रीय अधिनियमों का हिंदी रूपांतरण तैयार किया और उसमें प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों को संकलित करके विधि शब्दावली के रूप में 1971 में 'विधि शब्दावली' का पहला संस्करण प्रकाशित किया। इस संस्करण में लगभग दस हजार प्रविष्टियाँ थीं। इसमें 1970 तक उन अनेक महत्त्वपूर्ण अधिनियमों के प्रकाशित हिंदी प्राधिकृत पाठ से शब्दों और पदों का समावेश किया गया था। इन अधिनियमों में भारतीय दंड संहिता (Indian Penal Code), दंड प्रक्रिया संहिता, सिविल प्रक्रिया संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, संपत्ति अंतरण अधिनियम आदि प्रमुख थे। बाद में, आयोग को 1 अक्तूबर, 1976 से समाप्त करके इसके सभी दायित्व विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय के विधायी विभाग के राजभाषा खंड को सौंप दिए गए।

आगे चल कर, नव-स्थापित राजभाषा खंड ने शब्दावली निर्माण की उपर्युक्त प्रक्रिया को अपना कर 1979 में विधि शब्दावली का परिवर्धित (दूसरा) संस्करण प्रकाशित किया। तत्पश्चात् 1983 में विधि शब्दावली का तीसरा और 1988 में चौथा संस्करण प्रकाशित किया। तीसरे संस्करण की यह विशेषता रही है कि उसमें विधि के क्षेत्र में पूर्व में प्रचलित अरबी-फारसी द्वारों के हिंदी पर्यायों को भी शामिल किया गया था। वहीं, विधि शब्दावली निर्माण के सिद्धांत निर्मित करने की दृष्टि से विधि शब्दावली का चौथा संस्करण विशेष तौर पर उल्लेखनीय है। इसकी प्रस्तावना में विधि मंत्रालय के तत्कालीन अपर सचिव श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने शब्दावली की प्रस्तावना में इन सिद्धांतों का विस्तार से उल्लेख किया है। वर्ष 1992 में विधि शब्दावली का पाँचवाँ संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें विधिशास्त्र (Jurisprudence) के पारिभाषिक शब्दों को शामिल किया गया तथा वर्ष 2001 में छठा संस्करण प्रकाशित हुआ।

विधि शब्दावली को तैयार करते समय कुछ आधार-दृष्टियों को ध्यान में रखा गया है। संकल्पना का द्योतन करने वाले सभी शब्दों का अनुवाद, एक संकल्पना के लिए एक ही पर्याय, परस्पर संबंधित संकल्पनाओं के लिए यथासंभव ऐसी संज्ञाएँ रखना जो सदृश होते हुए भी सुभिन्न हों, संस्पर्शी शब्दों पर एक साथ विचार करके पर्याय सुस्थिर करना और अंग्रेज़ी के एकाधिक पारिभाषिक अर्थ दर्शाने वाले शब्दों के लिए एक से अधिक समानार्थी निश्चित करना शामिल है। शब्दावली निर्माण करते समय यह भी ध्यान रखा गया है कि जहाँ तक हो सके सभी भारतीय भाषाओं में सुग्राह्य हो। जहाँ अंग्रेज़ी में निकट अर्थ वाले एकाधिक शब्दों और उनकी अर्थच्छटाओं को प्रकट करना आवश्यक था उनके लिए मुख्यतः संस्कृत से और गौणतः अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिंदी में अलग-अलग शब्द रखे गए वहीं अनेक अंग्रेज़ी अथवा अरबी-फारसी मूल के शब्दों को

भी अपनाया गया। विधि शब्दावली निर्मित करते समय अंग्रेज़ी शब्दों का पर्याय निर्धारित करते समय यह भी ध्यान रखा गया कि क्या उस पर्याय-विशेष से वे शब्द व्युत्पन्न हो सकते हैं जो अंग्रेज़ी के शब्द से व्युत्पन्न होते हैं। शब्दावली में विज्ञान-प्रौद्योगिकी आदि से संबंधित शब्दों के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा निर्मित पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया गया।

(iii) **अन्य सरकारी प्रयास** : अन्य सरकारी प्रयासों के रूप में भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'ग्लॉसरी ऑफ टेक्निकल टर्म्स यूज़्ड इन दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया', 'ग्लॉसरी ऑफ पार्लियामेंटरी, लीगल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स' और 'बहुभाषी संविधान शब्दावली' आदि का प्रमुखता से उल्लेख किया जा सकता है।

'ग्लॉसरी ऑफ टेक्नीकल टर्म्स यूज़्ड इन दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' : विधि की शब्दावली का सर्वप्रथम प्रकाशन हमें 'ग्लॉसरी ऑफ टेक्निकल टर्म्स यूज़्ड इन दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' के रूप में नज़र आता है। इसे 1949-1950 में भारत सरकार ने प्रकाशित किया था। इसमें भारत के संविधान के हिंदी पाठ में प्रयुक्त संविधान विधिक शब्दों को शामिल किया गया। इसमें प्रविष्टियों को तीन कॉलमों में रखा गया। इस कोश में अंग्रेज़ी शब्दों में नागरी लिपि में हिंदी तथा दूसरे स्तंभ में रोमन लिपि में हिंदी शब्द दिए गए और तीसरे स्तंभ में अन्य स्वीकृत समानक दिए गए हैं।

'ग्लॉसरी ऑफ टेक्नीकल टर्म्स यूज़्ड इन दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' : यहाँ यह उल्लेख करना भी अनुचित न होगा कि आगे चल कर, इसी शीर्षक (ग्लॉसरी ऑफ टेक्नीकल टर्म्स यूज़्ड इन दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इंडिया) से भारत के संसदीय सचिवालय ने 1952 में भी एक शब्दावली प्रकाशित की थी। वस्तुतः यह शब्दावली, संविधान के हिंदी अनुवाद में प्रयुक्त किए गए विधिक शब्दों का संकलन-संग्रह है।

'ग्लॉसरी ऑफ पार्लियामेंटरी, लीगल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स' : आगे चलकर, लोक सभा सचिवालय ने 1957 में 'ग्लॉसरी ऑफ पार्लियामेंटरी, लीगल एंड एडमिनिस्ट्रेटिव टर्म्स' प्रकाशित की। इसमें अंग्रेज़ी शब्दों और पदावलियों के स्थान पर हिंदी अनुवाद में प्रयुक्त विधि शब्दावली का समावेश होने के अलावा, संसद और प्रशासन से जुड़ी प्रशासनिक शब्दावली और वाक्यांशों के हिंदी रूपांतर भी दिए हुए हैं।

सचिवालय के इन प्रकाशनों ने भी हिंदी विधि शब्द भंडार में निश्चित तौर पर अभिवृद्धि की।

'बहुभाषी संविधान शब्दावली' : विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड ने 'विधि शब्दावली' के अनेक संस्करण प्रकाशित करने में उल्लेखनीय योगदान देने के साथ-साथ 'बहुभाषी संविधान शब्दावली' बनाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस शब्दावली को राजभाषा

खंड को सौंपे गए सर्वप्रथम और महत्त्वपूर्ण कार्य 'यथासंभव सभी राजभाषाओं में प्रयोग के लिए प्रामाणिक विधि शब्दावली तैयार करना और उसे प्रकाशित करना।' की परिणति कहा जा सकता है।

'बहुभाषी संविधान शब्दावली', संविधान की पारिभाषिक शब्दावली के हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में प्रयुक्त शब्दों का देवनागरी लिपि में संकलन है। इस बारे में श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल का यह कहना सही है कि 'यह शब्दावली भारत की सार्वदेशिक शब्दावली का प्रत्यक्ष प्रमाण है।''[1] इसे तैयार करने के मूल में मुख्य रूप से यही भाव निहित था कि विधि की ''जो शब्दावली बनाई जाए वह केवल हिंदी को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि समस्त भारतीय भाषाओं में अधिकाधिक स्वीकार्य हो सके ऐसी होनी चाहिए। हमारी भाषाएँ जितनी निकट आएँगी उतना ही पारस्परिक संवाद और सौहार्द बढ़ेगा।''[2]

आगे चल कर, जब विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड ने संविधान का 13 भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित कराया तो उनके आधार पर संविधान की उस समय तक आठवीं अनुसूची में शामिल 12 भाषाओं (असमिया, बांग्ला, तमिल, मराठी, मलयालम, संस्कृत, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, गुजराती, तेलुगु, पंजाबी) और हिंदी के पर्यायों को शामिल किया गया। इसमें सबसे पहले संविधान की अंग्रेज़ी शब्दावली को लिया गया है और उसके बाद उसका सांविधानिक संदर्भ (अर्थात् संविधान के जिस अनुच्छेद आदि में उसे प्रयुक्त किया गया है) उल्लेख करने के साथ-साथ उक्त भारतीय भाषाओं के पर्यायों का लिप्यंतरण दिया गया है। उदाहरण के लिए संविधान के अनुच्छेद 39(ङ) में प्रयुक्त 'abuse' शब्द का उल्लेख किया जा सकता है, जिसका हिंदी में अर्थ है -- 'दुरुपयोग'। 'असमिया' और 'बांग्ला' में इसका पर्याय 'अपव्यवहार करना' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार गुजराती में 'दुरुपयोग थवो', कन्नड़ में 'दुरुपयोग माडु', मराठी में 'दुरुपयोग करणे', मलयालम में 'दुरुविनियोगिक्कुमा', उड़िया में 'दुरुयोग', पंजाबी में 'दरवरतों', संस्कृत में 'दुरुपयोगः', तमिल में 'तवरामट्प्यन् पड़लु', तेलुगु में 'दुरुपयोगमु', उर्दू में 'बूजा फ़ायदा' प्रयुक्त हुआ है। स्पष्ट है कि संस्कृत में 'दुरुपयोगः' शब्द का ही लगभग सभी भाषाओं में प्रयोग हुआ है, मात्र तमिल और उर्दू में भिन्न प्रयोग मिलता है।[3]

'बहुभाषी संविधान शब्दावली' के रूप में सामने आई यह शब्दावली 'अखिल भारतीयता की आकांक्षा' से विधि के क्षेत्र में एकता और एकसूत्रता स्थापित करने के ध्येय की प्राप्ति की दिशा में एक सार्थक क़दम है। इसी प्रकार का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रयास का दिग्दर्शन हमें स्वतंत्रता-पूर्व भारत के बड़ौदा (वड़ोदरा) राज्य में 1931 में तैयार किए गए 'सयाजी शासन शब्द कल्पतरु' के रूप में होता है जिसमें अंग्रेज़ी शब्दों के साथ गुजराती, मराठी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिंदी, बांग्ला, वडोदरा में प्रचलित शब्द एवं वडोदरा के लिए

मानक शब्द शामिल किए गए थे। विधि के क्षेत्र में 'बहुभाषी संविधान शब्दावली' को भी उसी प्रकार का, किंतु अपेक्षाकृत अधिक व्यापक, व्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रयास कहा जा सकता है।

अंत में यही कहा जा सकता है कि पैट्रिक कार्नेगी द्वारा शुरू की गई विधि संबंधी पारिभाषिक शब्दावली निर्माण संबंधी परंपरा और इसमें जुड़ने वाली कड़ियों ने मानक विधि शब्दावली की माँग निर्धारित की। इसलिए यह कहा जा सकता है कि उन सभी के द्वारा किए गए कार्यों की परिणति विधि मंत्रालय के राजभाषा खंड की 'विधि शब्दावली' में हुई। 'विधि शब्दावली' निर्माण का यह प्रयास वास्तविक अर्थ में व्यावहारिक रहा। विधि संबंधी पारिभाषिक शब्दावली निर्माण की दिशा में विधि मंत्रालय द्वारा किया जा रहा कार्य उत्तरोत्तर प्रगति पर है, जो वस्तुतः हिंदी की अभिवृद्धि, विकास और प्रचार-प्रसार का ही द्योतक है। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'विधि शब्दावली' ने सुनिश्चित शब्दावली प्रस्तुत करके विधि के क्षेत्र में एकरूपता एवं निश्चतार्थता लाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। विधिक सामग्री का अनुवाद एवं प्रारूप निरूपण जैसी व्यावहारिक दृष्टि से इसका प्रकाशन सार्थक एवं उपयोगी है।

❑

संदर्भ

1. विधि अनुवाद : विविध आयाम, कृष्ण गोपाल अग्रवाल, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष 2004, पृ. 74
2. विधि शब्दावली का निर्माण -- इतिहास, प्रक्रिया, सिद्धांत और प्रयुक्ति, ब्रजकिशोर शर्मा, पी.एच.आई. लर्निंग प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, वर्ष 2009, पृ. 93
3. अनुवाद के नए परिप्रेक्ष्य, संतोष खन्ना, विधि भारती परिषद्, नई दिल्ली, वर्ष 2008, पृ. 75

डॉ. कालिन्द्री

स्कूलों में बाल यौन-शोषण : एक गंभीर समस्या

कहा जाता है कि बच्चे देश का भविष्य होते हैं। लेकिन जब बच्चों के ही विकास में रुकावट आ जाए तो देश का भविष्य संकटमय दिखने लगता है। पिछले कई वर्षों बन रही योजनाओं, कल्याणकारी कार्यक्रमों, विधि निर्माण और प्रशासनिक कार्य के उपरांत भी भारत में अधिकतर बच्चे कष्टप्रद जीवन जीने पर मजबूर हैं। प्रायः ही उन्हें शारीरिक, लैंगिक और भावात्मक शोषण का शिकार बनना पड़ता है परंतु हाल ही की घटनाओं पर नज़र डालें तो बच्चों के यौन-शोषण की घटनाओं में तीव्रता से वृद्धि हुई है और यह मामला ज़्यादा गंभीर हो जाता है। जब शिक्षा का मंदिर कहे जाने वाले विद्यालयों में बच्चों को असुरक्षित माहौल का सामना करना पड़ता है इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि जिन स्कूलों में वहाँ के प्रबंधन और शिक्षकों के भरोसे लोग अपने अपने बच्चों के पढ़ने भेजते हैं वही लोग उन्हें अपनी हवस और आपराधिक कुंठाओं का शिकार बनाते हैं जिसके फलस्वरूप जनमानस का आहत व उद्वेलित होना स्वाभाविक है।

सितंबर, 2017 के महीने में गुरुग्राम स्थित रेयान इंटरनेशनल स्कूल में सात-वर्षीय बालक प्रद्युम्न को यौन शोषण का शिकार होना पड़ा जिसमें नाक़ाम होने पर स्कूल के ही एक अन्य छात्र ने उसकी हत्या कर डाली। वहीं दिल्ली के गाँधी नगर इलाके में स्थित टैगोर पब्लिक स्कूल में एक पाँच साल की बालिका से दुष्कर्म की घटना सामने आई है। इसमें आरोपी स्कूल का ही चपरासी था। इसी तरह राजस्थान के सीकर की हरदासकाबास गाँव के एक निजी स्कूल में बारहवीं कक्षा की छात्रा के साथ बलात्कार करने में स्कूल का निदेशक और एक शिक्षक शामिल था। अतिरिक्त कक्षा के बहाने स्कूल में बुलाकर दोनों ने छात्रा से बलात्कार किया। धमकी देकर आरोपी दो महीने तक उसका शोषण करते रहे। यही नहीं, गर्भवती हो जाने के बाद जब छात्रा का जबरन गर्भपात कराया गया तो उसकी तबियत ख़राब होने पर मामला सामने आया। जबरन

गर्भपात के लिए डॉक्टर के पास ले जाया गया उसने पैसे के लालच में पुलिस को ख़बर तक करना ज़रूरी नहीं समझा। इसी तरह बीकानेर के नोखा के एक निजी स्कूल में ऐसी ही घटना सामने आई थी, जिसमें आठ शिक्षकों ने तेरह साल की एक छात्रा का अश्लील वीडियो बनाकर उसे ब्लैक मेल किया और डेढ़ साल तक सामूहिक बलात्कार किया था। एक और मामले में हरियाणा के फरीदाबाद ज़िले के सीकर गाँव के सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले सातवीं कक्षा के छात्र के साथ दुष्कर्म के बाद उसकी हत्या कर दी गई थी और शव को पास की झाड़ियों में फेंक दिया गया था।

दूसरी ओर हैदराबाद में एक छात्रा को उसकी शिक्षिका ने लड़कों के लिए बने शौचालय में खड़े रहने की सज़ा दे डाली सिर्फ़ इसलिए कि छात्रा स्कूल की वर्दी में नहीं आई थी। ऐसी घटना मानव-समाज को शर्मसार करने वाली है। ये सारी घटनाएँ 2017 की हैं। यदि पिछले कई सालों की घटनाओं पर नज़र डालें तो उसमें भी मासूम बच्चों को यौन-शोषण का शिकार बनाया गया। रोहतक के शेल्टर होम 'अपना घर' में कम उम्र की लड़कियों के साथ यौन-शोषण होता था। उन्हें ज़बरदस्ती शराब पिलाई जाती थी और बड़े रसूख़दार लोगों के सामने पेश किया जाता था। नग्न अवस्था में उनकी वीडियो रिकॉर्डिंग की जाती थी तथा कुछ को बेच दिया जाता था।

'Anchorage Shelter' मामले में उच्चतम न्यायालय ने दो ब्रिटिश नागरिकों को उनके द्वारा मुंबई में चलाए जा रहे शेल्टर होम में अवयस्क लड़के का यौन-शोषण करने के अपराध की सज़ा सुनाई। जस्टिस पी. सथासिवम एवं जस्टिस बी.एस. चौहान की पीठ ने कहा, ''बाल यौन-शोषण एक गंभीर जघन्य एवं घृणित अपराध है जो बच्चों के विश्वास को चूर-चूर कर उनकी मासूमियत के साथ छल करना होता है।''

निठारी हत्याकांड में भी मासूम बच्चों का यौन-शोषण कर उनकी हत्या कर दी गई थी। इसके अलावा, स्थिति भयावह और ज़्यादा हो जाती है जब बच्चों का यौन-शोषण करने वाला उसका पिता ही होता है।

राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आँकड़े देखे जाएँ तो 2012 में 38,172 नाबालिग़ दुष्कर्म की शिकार हुई थीं और 2014 में यह आँकड़ा बढ़कर 39,423 पहुँच गया। अध्ययन बताते हैं कि भारत में 2014 में होने वाली घटनाओं में शामिल 90 प्रतिशत परिचित ही हैं।

बाल अपराध क्रूरता का सबसे भयंकर रूप है। स्कूल में बच्चे के साथ किया गया अपराध तो और भी भयंकर होता है क्योंकि न सिर्फ़ अभिभावक, बल्कि बच्चे भी अपने स्कूल और शिक्षकों पर भरोसा रखते हैं। ऐसे अपराधों से यह विश्वास तार-तार हो जाता है। यह बहुत ही स्वाभाविक है कि इन अपराधों से अन्य अभिभावक भी ख़ौफ़ज़दा

हो जाते हैं और वे अपने बच्चों को स्कूल भेजने से डरते हैं। NCRB (नेशनल क्राइम रिसर्च ब्यूरो) की रिपोर्ट के अनुसार साल 2015 में बच्चियों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराध के 94,172 मामले दर्ज किए गए। इसमें 12 प्रतिशत यानी 10,854 रेप के मामले थे। इसका मतलब यह हुआ कि देश में हर 48 मिनट पर कोई एक बच्ची हवस का शिकार बनती है। पोक्सो एक्ट के तहत 14,193 मामले दर्ज किए गए।

बच्चों को यौन उत्पीड़न से बचाने के लिए एवं ऐसे आपराधिक कृत्य के दोषियों को उम्र क़ैद तक की सज़ा का प्रावधान करने वाले विधेयक को 2012 (Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012) में मंजूरी दी गई। ऐसे मामलों में 18 साल से कम उम्र के सभी लड़के-लड़कियों को शामिल किया गया। पोर्न फिल्मों में बच्चों के इस्तेमाल को भी इसी विधेयक में लाया गया।

अभी हाल ही में कठुआ से लेकर सूरत, एटा, छत्तीसगढ़ और दूसरे राज्यों में हर रोज बच्चियों के साथ बलात्कार के जो दिन दहलाने वाले मामले आ रहे हैं, इस तरह की घटनाओं के बाद पूरे देश में जो गुस्सा है उसे देखते हुए केंद्र सरकार ने 12 साल से कम उम्र की बच्चियों से रेप के मामले में मौत की सज़ा के प्रावधान को मंजूरी दे दी है।

परंतु आम अनुभव है कि महज सख़्त क़ानून ऐसे अपराधों को रोकने में पर्याप्त साबित नहीं होते। इसके लिए स्कूल के स्तर पर अतिरिक्त सतर्कता की आवश्यकता है। स्कूल प्रबंधन को अपने कर्मचारियों का पुलिस सत्यापन कराना चाहिए। सीसी टी. वी. कैमरे की भी उचित व्यवस्था रखनी चाहिए जिससे तमाम गतिविधियों की रिकॉर्डिंग हो सके। इसके अलावा, विशेषज्ञ बच्चों को प्रशिक्षित करने पर भी जोर देते हैं ताकि अपने साथ किसी अवांछित हरकत के बारे में वे अपने शिक्षक या माता-पिता को बेहिचक सूचित करें। माता-पिता और शिक्षकों की ट्रेनिंग ज़रूरी है ताकि ऐसी शिकायतों को वे हल्के में न लें।

उच्चतम न्यायालय ने साफ़ कहा हे कि चाहे वाकया दिल्ली का हो या दिल्ली के बाहर का, चाहे प्राइवेट स्कूल का हो या सरकारी स्कूल का, हमारी चिंता समान रूप से सब घटनाओं को लेकर होनी चाहिए। ऐसी घटनाएँ यह इंगित करती हैं कि लोग जिन स्कूलों में अपने बच्चों की ज़िंदगी सँवारने के लिए भेजते हैं, वे शायद पूरी तरह निश्चिंत होकर भरोसा किए जाने लायक नहीं है। ज़रूरत इस बात की हे कि स्कूल में जाने वाले बच्चों से उनके अभिभावक लगातार संवाद में रहें, उन्हें भरोसे में लेकर उनकी दिनचर्या और उनके अच्छे-बुरे अनुभवों पर बात करें। निजता से जुड़े कुछ मामलों में सामाजिक आग्रहों और नज़रिए की वजह से बच्चे कई बार अपने साथ होने वाले आपराधिक दुर्व्यवहार के बारे में अपने अभिभावकों को कुछ भी बताने में डरते या हिचकते हैं। बच्चों

से होने वाले दुर्व्यवहार या उनके ख़िलाफ़ अपराधों की पूरी प्रवृत्ति इस ज़रूरत को रेखांकित करती है कि बच्चों को शुरू से इस बात के लिए घर में ही ऐसे प्रशिक्षित किया जाए, ताकि वे अपने साथ किसी भी बर्ताव की पहचान कर सकें और वक्त आने पर अपने अभिभावकों को बता सकें। इसके अलावा, लोग एक भरोसे के तहत अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं तो उनका हर तरह से सुरक्षित माहौल में पढ़ाई-लिखाई तय करना सरकार की भी ज़िम्मेदारी है। सरकार और प्रशासन की निगरानी, सख़्ती और सजगता स्कूल प्रबंधनों को इस बात के लिए जवाबदेह बनाएगा कि वे परिसर को सुरक्षित बनाएँ।

संदर्भ

1. ख़ौफ़ के स्कूल, नई दुनिया, 20 सितंबर, 2017
2. असुरक्षित स्कूली बच्चे, नई दुनिया, 11 सितंबर, 2017
3. चिंता का दायरा, जनसत्ता, 13 सितंबर, 2017
4. बच्चों की सुरक्षा का बड़ा सवाल, दैनिक जागरण, 13 सितंबर, 2017
5. कितने सुरक्षित हैं बच्चे, जनसत्ता, 21 सितंबर, 2017
6. NCRB की रिपोर्ट, 2015

❑

शेष पृष्ठ 244 का शेष...

व स्नेह के इसी भाव के फलस्वरूप उम्र के इस पड़ाव पर, इतना कलात्मक, सौंदर्यपूर्ण ग्रंथ उनके 'संस्कार' प्रकाशन से अस्तित्व में आ सका है। हेमा जी ने उन्हें पीयूष-प्रवाही कवयित्री कहा है, अपनी भूमिका में। डॉ. कौशल्या के 'दार्शनिक बोध, काव्यशास्त्रीय सौंदर्य और संगीत की स्वर लहरियों को संकलित कर दिया है।

कौशल्या जी की एक-एक कविता पर कई-कई पृष्ठ लिखे जा सकते हैं क्योंकि 'सतसैया के दोहरे' की तरह उनमें अर्थों की विभिन्न परतें एक के बाद एक अंतर्निहित रहती हैं। उनकी कल्पना शक्ति अपार है। यहाँ अधिक अवकाश नहीं है पर फिर भी एक लघु कविता को उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रही हूँ :

मैं कैसी हूँ --

तुरंत बता देते हो। / तुम क्या हो, वह तो खोजो! / औरों के रूप
मन में बसा लो, / तो भी कुछ ठीक है, /पर तुम तो एक के गुण-दोष
/ दिखा कर फिर दूसरे की प्रतीक्षा में / बैठ जाते हो! / तुम्हें 'दर्पण'
ठीक कहा -- / तुम्हें दर्प है कि बिंब दर्प करे।

वास्तव में पुस्तक प्रेमियों के लिए यह एक संग्रहणीय पुस्तक है।

❑

Prof. (Dr.) J.P. Yadav.

Juvenile Offenders in India : An Analysis

"Children are like wet cement whatever falls on them makes an impression", as said by Haim Ginott. Gender Justice is the demand of 21st century where our country is in the need of efficient laws. The appropriate treatment of female offenders by the juvenile justice system is a matter of increasing interest to policymakers, practitioners, and the public. Female offenders in the Juvenile Justice System portray realistic patterns in the arrest, judicial management, and correctional placement of female offenders. Girls are national wealth; however, the Juvenile Justice Mechanism in India has given least importance to their protection. Girl juvenile offenders are more vulnerable to sexual offences and other forms of molestation. Therefore, it is need of time to frame special protective policies for the protection of female offenders in Juvenile homes. In recent years, however, many people have come to believe that the problem of female delinquency is growing faster than the problem of male delinquency. This growth of female juvenile crime is often embraced by the public, the news media, elected officials, and juvenile justice practitioners. In response to these concerns, this article focuses on some questions like: (1) Treatment of female juvenile offenders once they are referred to the juvenile court; (2) Molestation of young females and; (3) Nature of offences against female children. In this article an attempt has been made to highlight actual problems with girl juvenile offenders and some suggestions have been submitted.

Key words : Juvenile Offenders, Gender Justice, Female Offenders

Introduction : In India, "Female Child or Baby Girl" has been greatly

praised in the literature and religion as 'Devi' or 'Shakti'; and woman as 'ardhangini' a portion of a man, however, by the contrivance of this civilization, this slice or part of man has assumed a very little proportion of the whole of man by reducing woman to an appendage of his life, a parasite, a domestic animal, a pleasure resort. The life of average Indian females is still governed by customs, habits, prejudices and unwritten codes of conduct.[1] We all been brought up in a way that highest honor and respect is for the fairer sex. Yet, unfortunately this fact demands introspection. Today, there is a rape every 29 minutes, a case of molestation every 15 minutes and a dowry death every 4 hours.[2] This is shameful and inhuman for the nation who prides itself for all the dignity it gives to its women as part of its culture and traditions. Therefore, it's of vital importance to look into the matter and make specific legislations which helps in the protection of the weaker sex of the society. In this article, the focus is on female children and treatment with them in Juvenile Cells in the name of rehabilitation.

The legal definition of "child" generally refers to a minor, otherwise known as a person younger than the age of majority. [3] Biologically, a child is anyone between birth and puberty or in the developmental stage of childhood, between infancy and adulthood.[4] Children generally have fewer rights than adults and are classed as not able to make serious decisions, and legally must always be under the care of a responsible adult.[5] The *United Nations Convention on the Rights of the Child* defines a child as "a human being below the age of 18 years unless under the law applicable to the child majority is attained earlier." Education starts from a very early age. One teaches himself/herself by observing and a child learns a great deal from their parents during early childhood especially about habits, attitudes, values etc. [6] Education can be classified as formal and informal education. Formal education is one that is acquired from schools and colleges and other such formal institutions or organizations. Informal education is one which is learnt from observation, teaching by parents, TV, radio, the internet, libraries etc. Education is of vital importance as it helps us acquire the requisite skills for survival and also helps us gain knowledge which in turn helps us think and reason effectively. This in turn helps us improvise on things and constantly invent to attain better outcomes. Education also helps one understand the process of change and adjust to it. A child has rights, but due to age constraints is unable to claim her/ his rights. The rights of a child are exercised by proxy through the family, society and State. Unfortunately, these very agencies are responsible for violating children's rights.

Juvenile Delinquency

Before the establishment of juvenile courts, children under the age of seven (Doli Incapex) were never held liable or responsible for any criminal acts which is already provided under section 83 of the Indian Penal Code. Whereas children between the age of 7 and 14 years were generally thought to be incapable of committing a criminal act, but this belief could be disapproved by showing that the youth had the knowledge of the crime and also knew about the repercussions of it which is also stated in section 83 of the Indian Penal Code, but children above the age of 14 years were charged with the same liability as that of an adult. Today, young people are considered juveniles until the age of 18. Juvenile crime, in law, denotes various offences committed by the children or youth under the age of 18 years and such acts are also referred as Juvenile Delinquency.[7] Various Causes of Juvenile Crimes are as following:

1. The family does rebuke and scold their children for which the child wants to indulge in crimes. They have been to poor socialization skills, totally neglected, the constant quarrel between husband and wife which does leads to broken house and divorce which ultimately affects the juveniles.
2. Child abuse both physically and mentally takes place with the peer's leads to deviance.
3. Company in Schools and when children join in vulnerable activities in groups, and the leaders of such groups has a strong influencing power and encourages the juveniles in the group to commit such crimes.
4. The indulgence in alcoholism and drug addiction does leads to health and mental problems where the juveniles losses their sense of responsibility and decision making powers and therefore indulge themselves into various crimes.
5. Poor conditions of living and food tends children to deviate moral behavior and rather from leading palm they snatch their needs.

Offences against Female Juveniles in Prisons : An Overview

1. **Prostitution :** The prostitution seems to be the biggest danger for the weaker sex in the prisons. Many of the women prisons are treated like sex slaves by the male inmates. They are forced and thre atened for performing the game of prostitution. Not only forced by the jail inmates but the girls are lured by the agents of a well organized network from their homes on various pretexts like a bait of a job, etc. and in some cases are whisked away forcibly and are supplied to the high profile celebrities or politicians or tycoons to name a few which are serving

the punishment in the prison. Therefore prostitution even in the prisons cannot be abolished by simple legislation like The Immoral Traffic (Prevention) Act, 1986 unless some strict conditions required for its abolition are created both outside and inside the prison premises.[8]

2. **Addiction of Drugs/ Tobacco :** Women are generally sentenced to jail for less serious offences as compared to men. The typical women in jail is young, poor, a single mother and high school dropouts which are more vulnerable when compared to others and are an easy target and therefore being outnumbered are easily victimized and frequently indulge into drug addiction and alcoholism.[9]
3. **Outraging the Modesty of Female Child :** ''Modesty is not only an ornament, but also a guard to virtue''. We may think that the position of women has changed with the development in the society especially, in the metropolitan cities but this is nothing but a myth. The country might have progressed and changed but it hasn't taught us to respect the modesty of women.[10] Section 509 and Section 354, of the Indian Penal Code deals with the offences of outraging the modesty of a women, the imprisonment for this is one year and also imposes fine but all these legislations have lost their significance because even after imposing the deterrence, the offences against women are committed inside the jails in the form of abuses, gestures, sounds and intruding the privacy of a woman.[11] In *Mrs. Rupan Deol Bajaj & Anr v. Kanwar Pal Singh Gill & Anr*[12] accused was held liable for outraging the modesty of the Indian Administrative Service Officer, belonging to Punjab cadre. Despite of much legislation like the Indecent Representation of Women (Prohibition) Act, 1986, the violence against the women are at its peak.
4. **Pornography :** Pornography is again one of the most hideous crimes against the juveniles in the prison. The girls are tortured and sexually assaulted. The idea behind sending the female juveniles is reformation and they could be adopted by the society. But unfortunately, when the female juveniles are sexually assaulted by the other inmates and also by the police officer and are forced to make a pornography which is enjoyed and seen by almost each and every inmates and also the police personnel and hence are further exploited and when they are released are forced to indulge into prostitution as their videos are always exploiting them at every step of life.
5. **Sexual Harassment by Police Personnel :** As a law enforcement agency the police owe a social and legal responsibility to protect women against crimes. However, with the increasing number of

women and young girls coming in contact with the police either as complainants or as accused or as victims of crime, there is a likely hood of police personnel misusing their power and authority and misbehaving or harassing the women for sex.[13] In 2014, over 60 sexual harassment cases against Delhi Police Personnel.[14] from showing porn films to use of filthy language were among the 62 sexual harassment charges were leveled against Delhi Police personnel including an assistant commissioner of police who was ''compulsorily retired''.[15] More than 30 police personnel from the rank of assistant commissioner of police to constable were booked by Delhi police on sexual harassment charges in the past three years.[16]

6. **Sexual Abuse :** The problem of sexual abuse of children and the problem of paedophilia is the most heinous and cruel crime against the juveniles especially against the girls. Though Goa Children's Act, 2003 contains provisions relating to the prevention of sexual abuse of children in general and tourism related to paedophilia in particular, a national law on grave sexual offences was wanting. Grave sexual assault includes deliberately causing injury to sex organ of a juvenile and also showing pornographic pictures and exhibitionism.[17] Therefore, the alleged offences stated above were committed by the personnel of one of the most elite forces of the country which also includes molestation, rape with minors, forcefully developing illicit relationship on fake identities and the list goes on. Exercising his Right to Information, Ashwini Shrivastava sought information on cases of sexual harassment against Delhi Police Personnel registered between 2007 and September 2010. According to the information received in response to the query, such cases were registered against 33 Delhi Police Officers.[18]

Offences against Women : A Reflection of Socio-Legal Perspective

The long history of prison reforms has failed to alleviate their sufferings. In 1836, Lord Macaulay first set up a committee to go into the question of prisons reforms. The resultant commission of the enquiry into jail management and Discipline of 1864, recommended that women prisoners should be kept away from male prisoners. The Indian Jails Committee of 1919 again laid stress on the segregation of women prisoners from men. It categorically stated that the object of imprisonment is not to isolate the offender from society, but to make efforts to reform and rehabilitate the offender so that the prisoner can be absorbed in the society on the release. Unfortunately, when it comes to women, even the most progressive

legislation encounters lukewarm support or non- implementation. [19]

The present scenario of the country seems worse as at present there are 16,951 women prisoners in the jails according to the analyses done by the NCRB and to look after them, the female staff is outnumbered which again becomes a very big reason for the harassment by the male dominated staff.[20] Therefore, the situation of the women under the custody has been the matter of great concern for the Department of Human Resource Development Ministry which set up a commission on women prisoners under the chairmanship of Hon'ble Justice Mr. Krishna Iyer and according to the finding of the committee, women in custody are a tragic testimony to judicial futility. Women languish in asylum because there is no one to take care of them or to take them back when they are cured. Wards are filthy and over crowded with not even the bare provisions of beds and pillows. The need for separate prison accommodation for women inmates has been emphasized repeatedly, yet there is indifference in implementation. There are nearly 4000 women prisoners in India are against this; there are only six institutions for women prisoners with a sanctioned capacity for 975 prisoners. The rest are kept in the wings where male prisoners are kept. In addition to this, the institutions meant for women prisoners are old buildings which have outlived their utility. [21]

The Juvenile Justice System in India

The Juvenile Justice (Care and Protection of Children) Act, 2000 is the primary legal framework for juvenile justice in India. This Act provides for a special approach towards the prevention and treatment of juvenile delinquency and gives a framework for the protection, treatment and rehabilitation of children in the purview of the juvenile justice system. This law, brought in compliance of the 1989 UN Convention on the Rights of the Child (UNCRC), repealed the earlier Juvenile Justice Act of 1986 after India signed and ratified the UNCRC in 1992. This Act has been further amended in 2006 and 2010. This is an Act to consolidate and amend the law relating to juveniles in conflict with law and children in need of care and protection, by providing for proper care, protection and treatment by catering to their development needs, and by adopting a child-friendly approach in the adjudication and disposition of matters in the best interest of children and for their ultimate rehabilitation through various institutions established under this enactment.

The juvenile justice system has evolved over the years based on the premise that juveniles are different from adults who commit acts generally should be treated differently from adults. Separate courts, detention

facilities, rules, procedures and laws were created for juveniles with the intent to protect their welfare and rehabilitate them, while protecting public safety. Each state should have particular ownership of the juvenile crime problems. The inclination toward crime often arises from factors at home, the impact of crime is felt in neighborhood, the arrest, and prosecution and in most cases, the disposition is city operations. But eventually the juvenile justice system lost its significant and path and also became a gender biased system and the laws framed for the juveniles took an ugly shape in the form of gender injustice.[22]

Girls in the justice system experience a multitude of risk factors, often at higher rates than their male counterparts. Offending girls exhibit higher rates of mental health problem, exhibit more aggression toward family members and suffer more negative consequences from their justice system involvement than offending boys. Antisocial girls are less likely to access treatment and have fewer community based treatment options than boys, despite their increased need for services. Finally, girls who are formally charged are more likely to be placed in secure confinement than boys in the same situation and to act out violently once there. The combination of these factors put female offenders on a pathway to continued justice system involvement and long term dysfunction that they carry on into adulthood and pass on to their children.[23]

Conclusion

The juvenile justice system has evolved over the years based on the premise that juveniles are different from adults who commit acts generally should be treated differently from adults. It is submitted by authors that girls in the justice system experience a multitude of risk factors, often at higher rates than their male counterparts. Offending girls exhibit higher rates of mental health problem, exhibit more aggression toward family members and suffer more negative consequences from their justice system involvement than offending boys. Same rules for both male and female child are not suitable. Special provisions must be added for protection to female juveniles. Children are all around us. They represent about a quarter of the world's population. They are not equipped to defend themselves; they depend on what is given them. They are victims of circumstances. They bring us joy, they bring us tears, and they are our reason to hope. "We must get the right service to the right kid at the right time". The past twenty years have been a tumultuous period for the Indian juvenile justice system. The most recent moral panic over juvenile delinquency and the myths associated with it – such as that an epidemic of youth violence was taking

place and that a new breed of juvenile super predators was emerging which led to dramatic changes in juvenile justice policies and practices and their influences are still in evidence. Punitive measures have been very wide and new laws had been framed and thereby girls must be given some extra relief in gender specific regulations.

❑

Refrences

1. Thresiamma Varghese, *Women Empowermnet in Oman: A Study Based on Women Empowerment Index*, *Far East Journal of Psychology and Business*, Vol. 2, No. 2, February 2011, p. 1.
2. A.S Anand, Justice for Women: Concerns and Expressions, (2002), pp. 1-3.
3. Shorter Oxford English Dictionary, Biologically, a child (plural: children) is generally a human between the stages of birth and puberty. Some definitions include the unborn or foetus., 397, 2007.
4. Paras Diwan and Peeyushi Diwan, Children and Legal Protection, Deep and Deep Publications, New Delhi, 1996, p. 13.
5. Retrieved from<http://www.hakani.org/en/convention/Convention_Rights_Child.pdf>, "Convention on the Rights of the Child", The Policy Press, Office of the United Nations High Commissioner for Human Rights, visited on 01/11/2017.
6. Retrieved from <http://ayushveda.com/blogs/education/nexus-between-the-terms-education-and-knowledge>/, visited on 01/11/2017.
7. 2 Roberts C.H, Juvenile Delinquency : Causes and Effects, 2015.
8. Retrieve on <www.alternet.org/world/femaleinmates> dated 05/11/2017.
9. Retrieve on<www.alternet.org>dated 05/11/2017.
10. Retrieve on<www.studymode.com/essays>dated 05/11/2017.
11. K.D. Gaur, The Iindian Penal Code, (Fourth Edition, 2012), p. 608.
12. 1995 (6) SCC 194
13. Paranjape N.V, CRIMINOLOGY AND PENOLOGY WITH VICTIMOLOGY, 16th edition, 2014.
14. Retrieve on<www.lawyerscollective.org> dated 05/11/2017.
15. Retrieve on <www.timesofindia.com> dated 05/11/2017.
16. Retrieve on<www.ndtv.com>dated 05/11/2017.
17. PARANJAPE N.V, CRIMINOLOGY AND PENOLOGY WITH VICTIMOLOGY, 16th edition,2014.
18. NDTV, Over 30 Delhi Policemen booked for Sexual Harassment in 3 year, February 20, 2011.

19. Retrieved from:<www.archive.org/details/eastindiajailsco>, visited on 01/11/2017.
20. Retrieved from:<www.dnaindia.com>, visited on 01/11/2017.
21. K. KUMAR, P. RANI-OFFENCES AGAINST CHILDREN; SOCIO-LEGAL PERSPECTIVES. Daya books, 1996.
22. Sapson, Robert and Laub, John 1993. Crime in the making: Pathways and Turning Points Through Life, Harvard University Press.
23. Paranjape N.V, Criminology and penology with victimology, pg. 236, 16th edition, 2014.

हिंदी कविता

इकबाल अकरम वारसी

हिंदी

मैं हूँ रसखान की पुत्री, मुझे तुलसी ने पाला है,
यही कारण है चारों ओर सिक्त मेरा बोलबाला है।
सुभद्रा ने दिए रोशन, किए हैं नाम से मेरे,
महादेवी की ममता का मेरे घर में उजाला है।
कहीं नीरज की पाती हूँ, कहीं बच्चन की मधुशाला,
मेरे बच्चों ने मेरे रूप को हर रंग में ढाला है।
ये हिंदी पूछती है, दोस्तों साहित्यकारों से,
कहाँ हैं पंत और दिनकर, कहाँ मेरा निराला है।
बहुत आशाएँ थीं जिनसे, जिन्हें नाजों से पाला है,
उन्हीं बच्चों ने अब मुझको मेरे घर से निकाला है।
जहाँ पर प्रेम भाईचारा की शिक्षा मिले सबको,
कहाँ हैं आज वो शिक्षक, कहाँ वो पाठशाला है।
कहाँ जाएँ ये निर्धन मित्र अपनी प्रार्थना लेकर,
सुदामा तो हजारों हैं, कहाँ अब मुरली वाला है।
मैं हर ठोकर का जीवन में बहुत सम्मान करता हूँ,
यही ठोकर जिन्होंने आज तक मुझको संभाला है।
विचारों के वह प्रदूषण से 'अकरम' बच नहीं सकते,
विचारों में जहाँ फैला हुआ, मकड़ी का जाला है।

❑

डॉ. अनिल कु. यादव एवं मार्शल बिरूआ

झारखंड के जनजाति क्षेत्र में खेती-बाड़ी के विकास में कृषि विज्ञान केंद्र की भूमिका

झारखंड राज्य सन् 2000 में अस्तित्व में आया -- यह राज्य बिहार के दक्षिणी हिस्से को अलग कर बनाया गए हैं। झारखंड एक आदिवासी राज्य है। झारखंड अपने यहाँ खदानों, बहुमूल्य खनिजों व वन उत्पादों के लिए जाना जाता है। वर्तमान में इसमें 24 ज़िले हैं। देश का 40 फीसदी खनिज सम्पदा अकेले झारखंड में मौजूद है। धनबाद, बोकारो, गिरीडीह, जमशेदपुर व राँची राज्य के मुख्य औद्योगिक शहर हैं। 2011 की जनसंख्या जनगणना के मुताबिक झारखंड की कुल जनसंख्या 3 करोड़ 30 लाख है, जिसमें 1.69 करोड़ पुरुष हैं जबकि 1.60 करोड़ महिलाएँ हैं। राज्य का स्त्री-पुरुष अनुपात 984 महिला प्रति 1000 पुरुष है। स्त्री-पुरुष अनुपात की दृष्टि से झारखंड देश के उत्तरी राज्यों के मुकाबले बेहतर प्रदर्शन कर रहा है। राज्य की कुल साक्षरता दर 66.41 प्रतिशत है। इसमें पुरुष साक्षरता 76.84 प्रतिशत है जबकि महिला साक्षरता दर 55.42 प्रतिशत के आस-पास स्थिर सी है। आदिवासियों की आबादी कुल जनसंख्या का 26.21 प्रतिशत है और अनुसूचित जाति का हिस्सा 12.08 प्रतिशत है। गौर से देखने वाली बात है कि 75.95 प्रतिशत ग्रामीण आबादी है जबकि 24.05 प्रतिशत शहरी आबादी है।

झारखंड की कुल आबादी की आर्थिक विशेषताओं का जब हम विश्लेषण करते हैं तब हम पाते हैं कि राज्य में कुल 40 लाख के करीब लोग खेती-बाड़ी करते हैं और लगभग 40 लाख 4 हजार के लगभग कृषि श्रमिक हैं। कामगारों की दृष्टि से पाया गया है कि कुल 1.3 करोड़ कामगार हैं। झारखंड में मात्र 38 लाख हक्टेयर भूमि पर खेती-बाड़ी होती है और जोत जमीन का मात्र 14 प्रतिशत भूमि ही सिंचित है। राज्य की मुख्य नदियाँ बराकर, दामोदर, कायल, स्वर्ण रेखा तथा शंख हैं। इन नदियों पर कई महत्त्वपूर्ण बिजली संयंत्र और सिंचाई हेतु नहरों का निर्माण किया गया है। राज्य के कुल क्षेत्रफल का 20

प्रतिशत हिस्सा वन से अवांछित है और हाल के वर्षों में वनों का विस्तार धीरे-धीरे बढ़ रहा है। भारत के अन्य आर्थिक रूप से अग्रणी राज्यों की तुलना में झारखंड एक बड़ी औद्योगिक इकाईयों के बनने की बृहत् संभावनाओं वाला राज्य है। साथ ही यहाँ यदि उचित ध्यान रखा जाए तो खेती-बाड़ी खासकर जैविक खेती द्वारा सब्जियों की खेती की अपार संभावनाएँ मौजूद हैं।

कृषि विज्ञान केंद्र (पलामू तथा गढवा)

कृषि विज्ञान केंद्र हर ज़िले के लिए एक वरदान है। यहाँ पर ज्ञान और विज्ञान का आदान-प्रदान होता रहता है। ये कृषि विज्ञान केंद्र किसानों से जुड़े हैं। किसानों को विभिन्न प्रकार की तकनीकियों से अवगत कराते रहते हैं और किसानों को कृषि उपकरण भी उपलब्ध कराते हैं। किसान किराये पर के.वी.के. से समय-समय पर लेते रहते हैं। के. वी.के. प्रशिक्षण प्रोग्राम केंद्र पर ही चलाते हैं और प्रदर्शन भी केंद्र पर ही देते हैं। इसके अलावा, कृषि वैज्ञानिक किसानों के खेतों पर भी जाकर मदद करते हैं।

पलामू तथा गढवा जिले का परिभ्रमण

कृषि विज्ञान केंद्र पलामू एवं गढ़वा देखने के लिए हम लोग वहाँ गए। यह भ्रमण हमने भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के एक अनुसंधान अध्ययन के अंतर्गत चल रहे महत्त्वपूर्ण अध्ययन के संबंध में राष्ट्रीय श्रम अर्थशास्त्र अनुसंधान एवम् विकास संस्थान, नीति आयोग, भारत सरकार, दिल्ली की तरफ से किया। यह एक महत्त्वपूर्ण दौरा झारखंड के दो जिलों पलामू एवं गढवा में हुआ। यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि झारखंड एक आदिवासी राज्य है और देश-भर में वहाँ नक्सलियों के सक्रिय होने की खबरें आए दिन टेलिविजन एवं अख़बारों में आती रहती हैं। नक्सलियों का प्रभाव वहाँ की ग़रीबी व विकास को ठीक से न पहुँच पाने को अहम वजह माना जाता है। ऐसे में इस दो सदस्यीय अनुसंधान टीम का वहाँ जा कर वस्तुस्थिति से वाकिफ होने की उत्सुकता का होना वाज़िब भी है हालाँकि इस अनुसंधान टीम का अपना एक निश्चित उद्देश्य रहा है जिसमें दो जिलों के कृषि वैज्ञानिकों के काम, योगदान और चल रहे महत्त्वपूर्ण योजनाओं, चुनौतियों आदि की एक विस्तृत समीक्षा व सत्यापन आदि-इत्यादि मुख्य थे। इन उद्देश्यों के अंतर्गत हमें इन दो जिलों के प्रगतिशील कृषक बंधुओं से मिलने का, उनके साथ समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का एक अवसर प्राप्त हुआ जो कई दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण व ज्ञानवर्धक रहा। निश्चित तौर पर हम यह कह सकते हैं कि इस भ्रमण एवं कृषि दर्शन के पश्चात जो हमें एक नई समझ का बोध हुआ। इस परिभ्रमण में हमारा जो पहला पड़ाव था वह डाल्टनगंज (पलामू) था, वहाँ के तीन कृषि वैज्ञानिक हमारे साथ थे। हम लोगों

ने उन्हें इस परिभ्रमण के महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को बताया तथा भ्रमण का पूरा विवरण एवं दैनंदिनी की संक्षिप्त में जानकारी दी इससे यह सुनिश्चित हुआ कि टीम मूल्यांकन कार्य करने में एक व्यवस्थित तरीका अपना सके और तदनुस्वरूप क्रियाकलापों की तैयारी व व्यवस्था की जा सके। डाल्टन गंज में 4 दिन के दौरान वहाँ के कृषि वैज्ञानिकों व कृषकों से हमें बेहद करीब से मिलने का तथा विचार विमर्श करने का और साथ आने-जाने का जो अनुभव हुआ शायद हमारे जहन में वर्षों तक जीवित रहेगा।

पलामू का विवरण

पलामू डाल्टनगंज में हमने एक फोकस्ड ग्रुप डिस्कसन (केंद्रित समूह विमर्श) का आयोजन किया जिसमें ज़िले भर से कुछ प्रगतिशील किसान जो के.वी.के. के वैज्ञानिकों से तकनीकी सलाह लेकर वैज्ञानिक तौर तरीकों से अवगत होकर खेती कर अपनी पहचान व समृद्धि को बढा रहे थे वे शामिल हुए थे, हमने इन प्रगतिशील किसानों से उनको वर्तमान में मिल रही सुविधा व तकनीकी सलाह-मशवरा और इन वैज्ञानिक खेती में आ रही समस्याओं को बार-बार जानने का प्रयास किया और कुल मिलाकर हमने यहाँ के कृषि क्षेत्र में हुई प्रगति, प्रयास और साथ ही आ रही बड़ी चुनौतियों का आकलन किया। डाल्टन गंज शहर के श्री संजय चौधरी से हुई हमारी मुलाकात जो वैज्ञानिक खेती द्वारा किसानों का नमूना है उसके पास 16 गाय है, पौधों की नर्सरी है। सब्जियों की खेती धान इत्यादि और मसरूम की खेती प्रमुख है। खेती से अच्छी आय लेने का पहला व बेहतर उदाहरण है।

दूसरा किसान दमोदर सिंह गाँव सिक्की लंका जो लगभग सौ एकड़ ज़मीन का मालिक है और इलाके का एक जागरूक किसान है। उसके पास खेती के नये औजार, मशीनें, ट्रैक्टर आदि उपलब्ध हैं। उनके पास एक ख़ास किस्म की बैगन की प्रजाति है जो उनका परिवार पारंपरिक रूप से इस प्रजाति को जीवित रखे हुए है। इन बैंगनों का साइज बड़े आकार का होता है जो कि लौकी जैसा लगता है। खेती के साथ-साथ वह हर सहभागी कार्यों को भी करता है जैसे मुर्गी पालन, पशु पालन तथा बकरियाँ पालन इत्यादि। हमने यह पाया कि यह किसान अकेला ऐसा था जिसके पास अपने कृषि उपकरण थे। बाकी किसान के.वी.के. से किराये पर लाते हैं।

तीसरे श्री गोविंद जी हैं जो जमुने ग्राम से हैं। उसके पास बेहतरीन नींबू के करीब 250 पेड़ हैं और साथ ही केले का भी अपने घर के निकट बगीचा है। श्री गोविंद जी काफी मेहनती हैं और वैज्ञानिक खेती को समय की जरूरत मानते हैं। इस खेती किसानी से वे सम्मानपूर्वक जीवनयापन करते हैं।

चौथा श्रीमति सुषमा जी है जो मसरूम के बीजों का उत्पादन करती हैं और उन बीजों का प्रयोग के.वी.के और अन्य किसानों के व्यवसायिक खेती के लिए भी उपलब्ध

है। अपने गृह कार्य के अतिरिक्त मसरूम के बीजों का उत्पादन करना एक सराहनीय कार्य है। पलामू में एक अमानत नदी है जिसके बारे में बहुत सारे किसानों ने चैक डैम बनाने का सुझाव दिया। उनका मानना है कि इससे पानी का स्तर ऊपर आएगा तथा पानी की उपलब्धता बढ़ेगी।

गढवा का विवरण

इस प्रकार हम आगे गढवा ज़िले में भी गए और वहाँ भी खेती से जुड़े लोगों की प्रगति, उनके प्रयास, जागरूकता और वैज्ञानिक खेती की तरफ उनका बढ़ता रूझान एक महत्त्वपूर्ण सूचक और संकेत है कि अब खेती के तौर तरीके और प्रबंधन में बदलाव का समय आ गया है। इस यात्रा से हम लगभग इस नतीजे पर पहुँचे कि किसानों को वैज्ञानिक खेती के तरीके उनके वैज्ञानिकों के साथ मिलकर उचित तकनीकी मदद से हो सकता है।

इसी कड़ी में हम गढवा में एक कृषक श्री वृजेष तिवारी से मिले, जो आधुनिक खेती करता है। उसके पास पपीता, अमरूद, आम एवं विभिन्न प्रकार के फूलों की प्रजातियाँ हैं। वे फूलों की खेती के लिए इलाके में प्रसिद्ध हैं। हम हैरान तब हुए जब यह सुना कि उनके फूलों की खोज ख़बर महामहिम राष्ट्रपति भवन की शोभा को बढ़ाने के लिए वृजेश जी के यहाँ उपलब्ध गुलाब के पौधों के लिए उन्हें राष्ट्रपति भवन के वैज्ञानिकों ने संपर्क किया। उनका गुलाब का फूल करीब 6 इंच का है जोकि राष्ट्रपति भवन के फूलों से बड़ा है।

गढवा में एक ग्रामीण इलाका हमें ऐसा भी देखने को मिला जहाँ सब्जियों की खेती एक मुख्य कृषि बन चुकी है और अधिकतर परिवार अपने खेतों में सब्जियों को लगाए हुए हैं। अब इसे सब्जियों के प्रमुख उत्पादन केंद्र के रूप में जाना जाता है। यह इलाका बहुत पिछड़ा हुआ है। दो तीन किसान हमारे साथ थे वहाँ सड़कों की हालत बहुत ख़राब थी। वहाँ किसान अपने उत्पादों को विशेष गाड़ियों द्वारा दो-तीन किसान मिलकर मंडियों में थोक के भाव व्यापारियों को बेच आते हैं और सामूहिक रूप से किराये पर ली गई गाड़ी से वापस आते और वापसी में ज़रूरी सामान, खाद, बीज इत्यादि लेकर आ जाते हैं।

इसमें दूसरा किसान जिससे हम मिले वे थे श्री वीरेंद्र कुशवाह, मीरल गाँव। इन्होंने अपने खेतों में गोभी, आलू, लहसून एवं प्याज लगा रखी थी। काफी अच्छी फसल थी। यह किसान अपना उत्पाद क्षेत्र की बड़ी मंडी में बेच देता है और अच्छे दाम पाता है।

मोती महतो एवं ब्रजकिशोर महतो (जाटा गाँव) के रहने वाले हैं। श्री ब्रजकिशोर मोती महतो के छोटे भाई हैं, काफी लंबे अरसे से कृषि विज्ञान केंद्र की सहायता का फायदा

उठा रहे हैं। इन्होंने भी अपनी मेहनत व लगन से अपने खेतों में गेहूँ, प्याज, आलू एवं सब्जियों की बेहतर खेती की हुई हैं और आय का मुख्य स्रोत तकनीकी आधारित उन्नत कृषि को बना रखा है। इसके अलावा मोती महतों की पुत्रवधू एक 'स्वयं मदद समूह' चलाती है। इसमें पापड़, अचार व अन्य चीजें बनाते हैं और दूर बाज़ार (गढवा) में बेच कर अच्छे दाम पाते हैं। इस प्रकार श्री मोती महतो का घर परिवार सकून की ज़िंदगी गुजर-बसर कर रहा है। एक युवा कृषक प्रदीप कुमार जो नारायणपुर से है, वह अपना खेत दिखाने के लिए बेहद उत्सुक था इनके यहाँ हमने आलू, हल्दी, वीट रूट, गोभी इत्यादि की फसल लगी हुई देखी जोकि बड़ी अच्छी थी। ये अपने इलाके के एक प्रगतिशील किसान माने जाते हैं।

निष्कर्ष

कृषि विज्ञान केंद्र देश में खेती-बाड़ी के क्षेत्र में एक अच्छी भूमिका अदा कर रहे हैं। इन केंद्रों में उन्होंने किसानों को भी जोड़ा हुआ है। किसान इन केंद्रों से तकनीकी सहायता के अलावा कृषि उपकरणों का भी लाभ लेते हैं। कृषि विज्ञान केंद्रों के वैज्ञानिक सिर्फ अपनी कार्यशाला तक ही सीमित नहीं रहते बल्कि किसानों के खेतों पर जाकर भी मदद करते हैं। कृषि स्वास्थ्य का भी ध्यान रखते हैं और उचित प्रकार की दवाई का राज्य सरकार के साथ मिलकर प्रावधान करवाते हैं। पैदावार का भी प्रतिलेखा या लेखा प्रमाण इनके पास होता है और यह किसानों के साथ सीधा संबंध रखने से संभव होता है। किसानों का भी यह मानना है कि कृषि विज्ञान केंद्र के वैज्ञानिक उन्हें हर तरह की मदद करते हैं तथा उनके मोबाइल आदि पर भी उन्हें अच्छा सहयोग करते हैं। यही वजह है कि नक्सल प्रभावित क्षेत्र में भी किसानों ने एक प्रसंसनीय कार्य किया है।

नीति निर्देश : इस अधिकारिक दौरे के दौरान हमने कृषक व कृषि वैज्ञानिकों के साथ गहन विचार-विमर्श किया और ठोस निष्कर्षों पर पहुँचने का एक वस्तुनिष्ठ प्रयास किया। हमारे देखने में कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू सामने आये हैं जो नीचे दिए गए हैं। इन पहलुओं पर गौर फरमाने की अति-आवश्यकता है।

1. कृषि वैज्ञानिक केंद्रों पर कृषि उपकरणों की कमी कृषकों के द्वारा जानकारी में लाई गई। उनकी पूर्ति तुरंत आवश्यक है।
2. जिले में पानी की उचित व्यवस्था कृषि के लिए बेहद जरूरी है।
3. अधिकतर कृषकों ने कृषि वैज्ञानिकों के द्वारा मिल रही महत्त्वपूर्ण तकनीकी मदद की सराहना की और इससे मिले लाभ भी हमें बताए। यह जारी रहना अति-आवश्यक है।
4. इस दौरान हमें कृषि वैज्ञानिक केंद्रों पर अधिकारीयों व कर्मचारियों की कमी के

बारे में भी जानकारी मिली, जिस अनुपात में वहाँ कार्य क्रियान्वयन हो रहे हैं। वहाँ कर्मचारियों की और जरूरत है। वे पद शीघ्र-अति-शीघ्र भरे जाएँ।

5. एक फसली पद्धति में जोखिम ज्यादा है जबकि वैज्ञानिक खेती में बहु-फसली पद्धति ज्यादा व्यवहारिक और लाभकारी है। अतः राज्य सरकार इसे बढ़ावा दे।
6. सब्जियों की जैविक खेती आज भी बहुत से किसानों की मुख्य खेती है, जिससे आय में मुनाफा संभव है। इसलिए इसको बढावा मिलना चाहिए।
7. कृषक भाइयों के लिए बीज का औषधियकरण बेहद जरूरी है जिनका अभाव खेती के लिए बेहद नुकसान का कारण हो सकता है। यह कार्य शीघ्र व समय पर किया जाना चाहिए।
8. दोनों ही जिलों में कृषि के विकास हेतु पानी की सुविधा के लिए छोटे-छोटे चैक डैमों का निर्माण एक आंदोलन स्तर पर चलना चाहिए, जिससे पानी की उपलब्धता में वृद्धि हो तथा किसान लाभन्वित हो।

❑

संदर्भ

1. डब्लू.डब्लू.डब्लू रजिस्ट्रार जर्नल ऑफ इंडिया (2011), भारत की जनसंख्या जनगणना (झारखंड)।
2. यादव ए.के. एवं मार्शल बिरूवा (2017), ''झारखंड के प्लामू तथा गढवा ज़िले के कृषि विज्ञान केंद्र का समीक्षा दौरा एक संस्मरण'' प्रकाशित, हिंदी बुलेटिन अंक-6, राष्ट्रीय श्रम अर्थशास्त्र अनुसंधान एवं विकास संस्थान, दिल्ली।
3. एचटीटीपी//डीसीएमएसएमई.गोव.इन/डीआईपीएस/स्टेट वाइज प्रोफाइल 16-17
4. डब्लूडब्लूडब्लू.झारखंड.गोव.इन/अबाउट
5. डब्लूडब्लूडब्लू.मैपस/ऑफइन्डिया.कॉम/झारखंड
6. एचटीटीपीएस//डब्लूडब्लूडब्लू.आईबीईएफ.ओर्ग/स्टेट/झारखंड.एसपैक्स

सन्तोष खन्ना

स्वप्न या सच?

स्वप्न किसी भी व्यक्ति की बपौती नहीं हैं। स्वप्न छोटा-बड़ा, अमीर-ग़रीब यहाँ तक कि ऊँच जाति या निम्न जाति का, कोई भी व्यक्ति देख सकता है। आज का देखा स्वप्न साकार हो सकता है। कुछ भी करने के लिए स्वप्न देखना ज़रूरी है। स्वप्न है तभी उसे पूरा किया जा सकता है। परंतु स्वप्न किसी जादुई करिश्मे से नहीं,, अपितु संकल्प, साहस, समर्पण और परिश्रम से ही संभव होते हैं। एक साकारात्मक सोच ही स्वप्न साकार कर सकती है। भविष्य भी उन्हीं व्यक्तियों का है जो स्वप्न साकार करने के लिए सतत् संघर्षशील हों।

मेरा भी एक स्वप्न था। भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों को देखने का। इसे पूरा करने के लिए मेरी उत्कठ अभिलाषा थी कि मैं जम्मू और कश्मीर की सबसे पहले यात्रा करूँ क्योंकि हिमालय पर्वत की गगनचुंबी चोटियाँ देखने के लिए भी वहाँ जाना चाहती थी।

वैसे भी हिमालय भारत के भाल का मुकुट है तो जम्मू और कश्मीर उस खूबसूरत मुकुट में जड़ा एक नायाब नगीना है, कोहिनूर है। कश्मीर का नाम सुनते ही सर्वप्रथम यही प्रतिक्रिया होती है कि ऐसा सुंदर और भव्य स्थल और कहीं नहीं। कवियों ने कहा ही है कि ''यदि स्वर्ग कहीं धरा पर है तो वह यही हैं, यहीं है।'' जिसने भी कश्मीर की यात्रा की है वह शत-प्रतिशत इस बात से सहमत होता है कि वास्तव में यह एक ईश्वर प्रिय स्वर्गिक स्थल है। दूसरी प्रतिक्रिया यह भी हो सकती है कि इस स्वर्गिक धरा को अब हिंसा, अशांति और भयावह स्थितियों में तब्दील कर दिया गया है जहाँ अब कई बार परिंदे भी पर मारने की जुर्रत नहीं कर सकते। परंतु स्वप्नों के सौदागर अपनी जान जोख़िम तक में डाल कर यहाँ की यात्रा कर अपने जीवन की साध पूरी करते हैं। हाँ, ज़रा सी स्थिति में सुधार आते ही कई साहसी सैलानी इस स्वर्ग में विचरण करने का अवसर हाथ से नहीं जाने देते हैं।

मैं यहाँ बहुत पहले की बात कर रही हूँ जब हमारा बेटा यही कोई छह-सात वर्ष का था अर्थात् यह 70 के दशक के आरंभ की बात है। सब कहते हैं वैष्णो देवी माँ के दरबार की यात्रा तब होती है जब माँ बुलाती है। हमारे भी अहो भाग्य कि माँ ने हमें बुला लिया। पहली अथवा दूसरी बार माँ के दरबार जाने के लिए हमने पहाड़ों की पैदल चढ़ाई की। उस समय माँ वैष्णो के प्रति श्रद्धा और भक्ति से तो मन गदगद् हो ही रहा था, प्रकृति के नज़ारों का अपना ही अनोखा सम्मोहन था। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों के समक्ष खड़े हो कर अपने छोटे अस्तित्व को पहचानना अपने आप में एक अनोखा अनुभव होता था। तब भी इस लघुता में किसी विराटता के अस्तित्व का अहसास चौंका जाता था।

माँ के दर्शनों के बाद जम्मू लौटे तो मैं, मेरे पति और बेटा, हम तीनों जम्मू से बस लेकर कश्मीर पहुँच गए, वहाँ की वादियों के अद्भुत नज़ारों को स्वयं अपनी आँखों से देखने और वहाँ के अद्भुत शांत परिवेश के सान्निध्य में रह कर अपने मन प्राणों का उनसे तादात्म्य स्थापित कर अमृत-से आनंद में अघाने के लिए। प्रकृति का नैसर्गिक सौंदर्य और वैभव का दर्शन एक छोटी बात नहीं है।

स्वाभाविक था वहाँ हम सबसे पहले श्रीनगर के दर्शनीय स्थलों की सैर करते। जवाहर टनल पर कुछ पहाड़ों को पार कर श्रीनगर जाने के लिए 60-70 किलोमीटर सड़क जी.टी. रोड की तरह होना समतल ही मुझे आश्चर्यचकित कर गया कि कई घंटों के एक के बाद एक पर्वत श्रेणियों की ऊँची-ऊँची घुमावदार सड़कों पर सफर करते-करते पहाड़ों के ऊपर एक लंबा-चौड़ा समतल मैदान! मेरे लिए तो यह कल्पनातीत था। ऐसा लगा मानों सदियों चढ़ कर किसी विशाल भवन की छत पर पहुँच गए हों। इसे देख कर एक अनोखा रोमांच हो आया। उस सड़क के दोनों ओर सुंदर वृक्ष तथा दूर-दूर कई पहाड़ अपनी उपस्थिति दर्ज़ करा रहे थे परंतु वह उस सपाट और समतल सड़क के पास कहीं नहीं आए। ईश्वर की कारीगरी पर वस्तुतः आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है कि गोल-मटोल चपटी धरा पर भी विधाता ने कैसे-कैसे अजूबे रच रखे थे। हम इस यात्रा के दौरान गुलमर्ग भी गए। उसके ऊपर घुमावदार सड़कों से होते खिलनमर्ग भी गए जहाँ एक लकड़ी गाड़ी पर वहाँ बर्फ़ पर घूमते रहे। तंगमर्ग पर वापसी के लिए हमने घोड़े लिए थे। मेरा बेटा एक अलग घोड़े पर था और उसने घोड़े को इतनी ज़ोर की एड़ लगा कर भगाया कि हम बहुत पीछे छूट गए और पूरे रास्ते उसके बारे में चिंता करते रहे कि वह सही सलामत पहुँच जाए क्योंकि कम से कम मुझे तो डर-सा महसूस होता था जब घोड़ा सड़क के एकदम किनारे पर चलने लगता और नीचे गहरी खाइयाँ दिखाई देती, तभी मैं घोड़े के साथ चलने वाले व्यक्ति को एकाएक पुकार कर कहती, 'भैया, घोड़े को संभालो।'

जब हम तंगमर्ग वापस पहुँचे तो वहाँ बेटा बहुत पहले ही पहुँच चुका था। उसके साथ कुछ नौजवान लड़के खड़े हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसे सकुशल देख कर हमारी जान में जान आई। उन नौजवानों ने हमें बताया कि आपका बेटा एकदम निडर हो कर घोड़ा चला रहा था और हमारे साथ खूब बातें कर रहा था। इसने तो हमारे सफर को भी रोचक और यादगार बना दिया। हमें इसका साथ बहुत अच्छा लगा। उनमें से एक नौजवान ने कहा, ''पता है आँटी हमें क्या बता रहा था। कह रहा था कि दिल्ली में हमारे 30 मकान हैं।''

''अच्छा!'' हमें भी आश्चर्य हुआ। शायद वह हमारे सभी रिश्तेदारों, मित्रों आदि के घरों की बात कर रहा होगा।''

उस समय हम सब हँस रहे थे।

इसके बाद हमारा सोनमर्ग जाने का कार्यक्रम बना। हम सुबह-सुबह ही बस से वहाँ के लिए रवाना हुए। सड़क के साथ-साथ सिंधु नदी अपने ऊँचे-नीचे बहाव से हमारा मन मोह रही थी। उसका हल्का नील स्वच्छ जल एक अनोखी पावनता परिवेश में फैला रहा था। इस नदी का नाम सिंधु अवश्य है परंतु यह सिंधु नदी से अलग नदी है। यह नदी श्रीनगर से पहले जेहलम नदी में मिल जाती है। सोनमर्ग में हमारा सामना वहाँ दूर-दूर तक फैले ग्लेशियर से हुआ जो अपनी धवलता से नीले आसमान के साथ एकमेक होता प्रतीत हो रहा था। बर्फ़ की इस धवल चादर के बीच कहीं-कहीं छोटी-छोटी बहती पानी की धाराएँ प्रवाहित हो रही थीं।। इन पर बर्फ़ के ही पुल बने थे। वहाँ की अनेक बातें स्मृति पटल पर अभी भी बनी हुई हैं किंतु वहाँ मेरा एक अनुभव तो वर्णनातीत है। वहाँ धवल हिमखंड से दूर बर्फ़ से ढकी पेड़ों की मनमोहक कतारें देखी जा सकती थीं जो अपनी हरितमा की आभा बिखेर रही थी। हम सधे-सधे क़दमों से हिमखंड के धरातल को पार कर एक ऊँची पहाड़ी पर पहुँचे। वहाँ खड़े हो कर चारों तरफ़ नज़र दौड़ाई सब धवल ही धवल और उस विस्तृत धवलता पर झुका-झुका-सा नीला आसमान। पल भर मेरा धरती से संपर्क टूट गया, ऐसा अहसास हुआ मानो मैं, मेरा संपूर्ण अस्तित्व समूची सृष्टि में विसर्जित हो गया है। उस पुलक का या उस उदात्त चेतना का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं, वह अनिर्वचनीय आनंदभूत क्षण... जहाँ मैं कहीं नहीं हूँ, क्या इसे ही उस अनाम सत्ता से महामिलन की संज्ञा दी जाती है, मैं नहीं जानती, उस क्षण की गरिमा या गौरव का अनुभूत सत्य क्या है, कभी जान भी नहीं सकूँगी, बस उस क्षण को बार-बार अपने अंतस में भर कर पुनः पुनः जीना चाहती हूँ। आप सब से उस क्षण की महिमा को शेयर कर रही हूँ, क्या कोई उस क्षण के रहस्य पर प्रकाश डाल सकता है? क्या स्वयं ईश्वर थे जो मुझे मिलने आए थे? जब श्रीकृष्ण ने महाभारत के मैदान

में अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाया था, क्या वैसे ही इस तरह की अनुभूति ही अर्जुन को हुई होगी?

वैसे वैज्ञानिक कहते हैं कि कहीं किसी ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है; सृष्टि एक स्व-विकसित अवधारणा है जो सतत क्रियाशील है और विस्तृत भी होती जा रही है। यह अणु-परमाणु जगत का खेल है जो बनते मिटते रहते हैं। वर्ष 2012 में एक विस्तृत हेड्रॉन कोलाइडर महाप्रयोगशाला में एक महाप्रयोग किया गया था जिसके माध्यम से वैज्ञानिकों ने सृष्टि निर्माण का रहस्य जान लेने का प्रयास किया था। वैज्ञानिकों को तलाश थी गॉड पार्टीकल या ईश्वर कण की...। कहा भी गया कि उन्होंने उस गॉड पार्टीकल को ढूँढ़ लिया है।

मैंने कभी भौतिकशास्त्र नहीं पड़ा, अतः गॉड पार्टिकल को समझने के लिए मैंने अपने पौते आकाश से ही पूछा, 'गॉड पार्टीकल या ईश्वर कण का हिग्ग्स बोसोन के साथ क्या संबंध है क्योंकि यही कहा जाता है कि ईश्वर कण की पहचान करना हिग्ग्स बोसोन सिद्धांत को आगे बढ़ाना है।''

पहले तो वह ना नकुर करता रहा। ''गूढ़ भौतिकशास्त्र आप कैसे समझोगे।'' जब मैंने ज़िद की तो उसने कहा, बताऊँगा पर अभी नहीं, ''पहले मैं इसे अच्छी तरह समझ लूँ।'' दो दिन बाद मैंने फिर उससे पूछा तो वह हँसते हुए बोला, ''यह सब समझने के लिए पहले आपको भारत के महान् वैज्ञानिक सत्येंद्र नाथ बोस के बारे में जानना होगा।''

''हाँ, हाँ, बताओ, कौन थे वह और अभी जीवित हैं क्या?''

''नहीं, अब जीवित नहीं हैं, उनका जन्म 1 जनवरी, 1894 में कलकत्ता में और निधन 4 फरवरी, 1974 को हो गया था। वास्तव में उन्होंने महान् भौतिकी वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन के साथ मिल कर सिद्धांत प्रतिपादित किए थे।

''अच्छा!'' मुझे आश्चर्य हुआ। दोनों ने मिल कर काम किया तो परंतु जितना नाम अल्बर्ट आइंस्टाइन का है वैसे ही सत्येंद्र नाथ बोस को क्यों प्रसिद्धि नहीं मिली।''

''यह मैं नहीं जानता। पर यह अवश्य जानता हूँ कि जिस ईश्वर कण के बारे में आप जानना चाहती हैं वह उन्हीं के नाम पर है -- गॉड पार्टिकल की सबसे पहले उन्होंने खोज की थी, उसका नामकरण उन्हीं के नाम पर किया गया है। 'Boson particle' का नाम उनके बोस नाम पर ही रखा गया है।

''यानी Bose से बना है Boson. वाह! वेरी गुड! बड़ी लाभकारी जानकारी है तुम्हारे पास तो...।'' मैंने लगभग ख़ुशी से उछलते हुए कहा।

''अरे, वाह! जब विज्ञान में आपका इतना इंटरेस्ट है। तो आपने विज्ञान पढ़ा क्यों नहीं हैं।''

मेरी पढ़ाई कैसे हुई, वह मत पूछो, वह अलग से एक महापुराण है। ईश्वर का धन्यवाद कि उससे मुझे कुछ तो पढ़ाया। अगले जन्म में मैं विज्ञान अवश्य पढूँगी।''

''अगले जन्म में क्यों? इसी जन्म में पढ़ तो रही हैं न मुझ से...।'' उसने हँसते हुए कहा।

''हाँ! बिल्कुल। तुम... नहीं, नहीं, आप मेरे टीचर हो...।''

''इसका क्या अर्थ हुआ, ज़रा इसे ओर स्पष्ट करो।''

''सर्वप्रथम सत्येंद्र नाथ बोस ने ही छोटे से छोटे कणों की अवधारणा की खोज की थी और इस छोटे से छोटे कण गॉड पार्टिकल को बोसोन नाम दिया गया जिसके बारे में आगे चल कर और प्रयोग हुए। एक वैज्ञानिक पीटर हिग्ग्स ने यह बताया कि ब्रह्माण्ड में हर खाली स्थान पर एक फील्ड बना है और उस फील्ड को नाम दिया गया हिग्ग्स बोसन फील्ड। इसका क्या अर्थ हुआ? ज़रा स्पष्ट करो।''

''इसके लिए तो पहले आपको विज्ञान के बारे में और जानकारी देनी होगी।''

''आप बताते जाओ, मुझे विज्ञान के बारे में जान कर बहुत अच्छा लगता है।''

''पर उसके पहले बेसिक्स आने चाहिए... जैसे Electron, Neutron तथा Proton क्या होते हैं?''

''यह हैं अणु, परमाणु और...''

''हाँ, हाँ, वह हिंदी में नाम हैं। मैं आपको इस बात को एक उदाहरण से समझाता हूँ... जैसे पानी की एक बूँद में 1.67×10^{21} अणु होते हैं।''

''माई गॉड, इतनी माइंड बोगलिंग संख्या...''

विज्ञान तो विषय ही माइंड बोगलिंग संख्याओं का नाम हे जिसके आधार पर गणना कर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। सुनो... पानी का एक सूत्र एचटूओ (H2O) कहलाता है। इसका अर्थ है जब हाइड्रोजन के दो परमाणु और ऑक्सीजन का एक परमाणु मिलता है तब पानी का एक अणु बनता है -- इसका अर्थ यह भी है कि अणु से भी छोटे कण हैं।

हिग्ग्स बोसन की खोज से पहले प्रोटोन को सबसे छोटा कण माना जाता था। एक हाइड्रोजन परमाणु के अंदर एक इलेक्ट्रॉन एक न्यूट्रॉन होता है। प्रोटोन और न्यूट्रॉन हाइड्रोजन के केंद्र में होते हैं तो इलेक्ट्रॉन केंद्र के चारों तरफ़ घूमते हैं। प्रोटोन के अंदर की खाली जगह को हिग्ग्स फील्ड कहते हैं। इस खाली जगह के अंदर जो सूक्ष्म कण हैं उसे गॉड पार्टिकल या ईश्वर कण कहा जाता है जिनको देखना संभव नहीं है। प्रोटोन के बाहर इलेक्ट्रॉन ओर प्रोटोन के बीच की ख़ाली जगह पर ईश्वर कण होते हैं। दूसरे शब्दों में जहाँ कुछ नहीं होता वहाँ ईश्वर कण होते हैं। इसी की खोज महाप्रयोग में की

गई थी।

''क्या बात है! बहुत सनसनी और शानदार खोज...।''

''खाली फील्ड में पाए जाने वाला ईश्वर कण ही समूचे ब्रह्माण्ड के अस्तित्व का आधार है।

''ओ! समझ गई...।'' मैंने अनजाने आत्म विश्वास से भर कर कहा।

''क्या समझ गए?'' वह मेरी भाव भंगिमा को देख आश्चर्यचकित होता हुआ बोला।

''गुरुदेव, आपने बताया, जहाँ भी अणु-परमाणु के बीच या उसके बाहर खाली स्थान है वहाँ एक खाली फील्ड निर्मित है। हमारी देह भी तो अणु-परमाणु का खेल है; देह के भीतर और बाहर भी खाली हैं अर्थात् सब जगह ईश्वर कण विद्यमान हैं। हम सब ब्रह्माण्ड और एक-दूसरे से ईश्वर कण से जुड़े हैं।

''एग्जेक्टली... (ताली बजाते हुए) बिल्कुल सही... बड़ी मम्मी, आपको विज्ञान पढ़ना चाहिए था...।''

''हमारे ऋषि-मुनि तो ब्रह्माण्ड के इस रहस्य को बहुत पहले से जानते थे। उनकी भाषा दूसरी हो सकती है किंतु उसका अर्थ तो वही था जो आज के वैज्ञानिक कह रहे हैं।''

''आप भारतीय भी न... बस यह कहते नहीं थकते कि हमारे ऋषि मुनियों ने यह कहा, वह कहा... पर उसके पास वैज्ञानिक आधार कहाँ था। ''ईश्वर कण एक नामकरण है। वैज्ञानिक अभी किसी ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं करते...।''

''भारत के प्राचीन ऋषि अर्थात् विद्वानों ने ब्रह्माण्ड के जिन रहस्यों का पता लगाया था विज्ञान आज उन्हें सिद्ध कर रहा है।

''वह आप जानती होंगी, मुझे कहाँ पता है। हाँ, ईश्वर कण में भार होता हे जो समूची सृष्टि को स्वयं में जोड़ कर रखता है, यदि ईश्वर कण में भार न होता तो न तो यह तारे बनते, न ही आकाश गंगा होती और न ही परमाणु होते, ब्रह्माण्ड कुछ और ही होता।''

''मुझे सब समझ आ रहा है। संत कबीर ने एक दोहे में कहा है --

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है
बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ, कुम्भ, कुम्भ में समाना
यह तत कथौ गियानी।।''

''आप हर बात में कविता को ले आते हो... मैं क्या समझूँ इसका अर्थ।''

''मैं बताती हूँ। मान लो सागर में आप एक कच्चा घड़ा डालते हो, उसके भीतर

पानी भर जाएगा। हाँ न! अगर वह सागर में रहेगा तो उसके बाहर भी पानी होगा। मिट्टी का घड़ा पानी में टूट ही जाएगा, भीतर का पानी और बाहर का पानी एकाकार हो जाएगा। खाली स्थान पर ईश कण, अणु-परमाणु के भीतर खाली स्थानों पर ईश्वर कण विद्यमान होते हैं, अणु-परमाणु बनते बिगड़ते रहते हैं। बिल्कुल मिट्टी के घड़े के समान... ईश्वर कण ही तो अन्स्यूत करने का साधन है... इस कविता का भाव विज्ञान के ईश्वर कण से कितना मिलता है। जैसे कण-कण में ईश्वर है।''

''बस-बस! मैं आपका रहस्य ज्ञान नहीं जान सकता...।''

मुझे कुछ अहसास हो चला था कि उस उदात्त क्षण में मेरे भीतर का कुछ टूटा अवश्य होगा जिसके कारण मैं उस क्षण किसी विराट सत्ता के सौजन्य में पहुँच गई थी... विज्ञान भी क्या अद्‌भुत विषय है, सभी को इसका अध्ययन अवश्य करना चाहिए...।

ख़ैर, विषयांतर बहुत हुआ। उस अतीन्द्रिय अनुभव के उस क्षण से पुनः गुज़रने के लिए मैं पुनः दो बार सोनमर्ग गई किंतु वह क्षण मुझे फिर नसीब नहीं हुआ। अब भी कभी वहाँ जाने का अवसर मिलेगा तो सोनमर्ग की यात्रा अवश्य करूँगी कि शायद उस स्थल पर वह कौन-सी चेतना या ऊर्जा थी जिसने मुझे उस अनोखे अनुभव का सुअवसर प्रदान किया था, खैर, वह मेरे संपूर्ण जीवन के अस्तित्व का एक अद्‌भुत रहस्य है जिसे मैं स्वयं समझने का असफल प्रयास करती रहती हूँ।

जब हम कश्मीर गये थे तब वह समय आजकल के कैमरों, मोबाइलों या छोटे-छोटे पी.सी. का नहीं था, जो आज सेल्फी खींचने के क्रेज में शुमार हो चुका है। उन दिनों हमारे पास कैमरा भी नहीं था। हमने एक दुकान से एक छोटा-सा कैमरा किराए पर लिया और उससे कुछ चित्र खींचे, वह रंगीन चित्र नहीं, ब्लैक एंड व्हाइट थे। उस कैमरे से जो चित्र हमें दुकानदार ने थमाए थे उनका आकार पासपोर्ट साइज से कुछ ही बड़ा था। डल लेक के चारों ओर पक्के बने मेड़ के कुछ चित्र थे जिसमें मेरे बेटे को उसके पापा पकड़ कर फोटो खिंचा रहे हैं और बेटा शरारत से दोहरा तिहरा हो रहा है।

डल झील के सौंदर्य से तो सभी अभीभूत है ही, इसके तीन और हरे-भरे दर्शनीय पहाड़ हैं तो झील के बीच बीच है चार चिनार। हम लोग भी एक नाव में बैठ कर चार चिनार देखने गए थे। उस समय देखा चिनार के वहाँ बहुत पुराने सुंदर, ऊँचे और हरे भरे चार पेड़ हैं तब वहाँ कुछ दुकानें थीं। हमने वहाँ बैठ कर चाय पी थी। हो सकता है अब इस स्थल की रौनक ओर बढ़ गई होगी। शहर से लगती झील की ओर असंख्य शिकारे खड़े थे जिनमें कई तो उनके महलों की शोभा लिए हैं। मैंने यह सब उनके अंदर जा कर नहीं देखा, परंतु उन्हें फिल्मों में प्रायः दिखाया जाता है। नाव में बैठ कर झील के बीच बने नेहरू स्थल पर भी जाया जा सकता था। झील में नौका विहार भी आनंद

विभोर कर देने वाला था।

यह सब लिखते-लिखते मेरी आँखें नींद से बोझिल होने लगी थीं। रात काफ़ी हो चुकने के बाद वस्तुतः नींद आना स्वाभाविक ही था। नींद में भी मेरा संपर्क डल लेक से टूटा नहीं था। हालाँकि मुझे तैरना नहीं आता, कई बार स्वीमिंग पूल में जाने का अवसर भी मिला किंतु मुझे हमेशा डर ही लगता रहा और मैं स्वीमिंग पूल की दीवार या मैड़ कहिये उसे कभी छोड़ नहीं पाई। पोता-पोती, बेटा-बहू सभी स्वीमिंग सीख गए पर मेरे हाथों से स्वीमिंग पूल की मैड़ कभी छूटी नहीं, बच्चे मज़ाक भी करते, ''आप तो ग्लाडिंग भी करना चाहती हैं, आप इतना डरती हैं तो आप कभी ग्लाडिंग नहीं कर पाएँगी।''

शायद स्वप्न था। मैं डल झील में तैर रही थी, मैं तैर कर चार चिनार जा पहुँची और फिर वापस। तभी स्वप्न की चेतना में स्मरण हो आया। वैज्ञानिक मंगल गृह पर जीवन की खोज के लिए वहाँ उस गृह पर जल की खोज कर रहे थे, वहाँ उन्होंने एक झील खोज निकाली है जो मंगल ग्रह के दक्षिणी ध्रुव के पास है और मंगल की सतह के नीचे है।

पता नहीं क्या हुआ, मैं अचानक मंगल ग्रह पर हूँ और उस बियावान में लाल धरती पर अत्यंत ऊँचे पहाड़, घाटी और गहरे गड्ढों में उस झील को खोज रही हूँ। अचानक चट्टान से भी सख़्त बर्फ़ के धरातल पर पैर रुक जाते हैं और लो! बर्फ़ की चट्टान खिसकती सी लगी और मैं धड़ाम से झील के हल्के शीतल जल में जा गिरी और फिर वहाँ तैराकी शुरू! झील का जल बर्फ़ के नीचे हैं। मैं बस तैरती जा रही हूँ। झील के पानी की कुछ बूँदें मेरे हल्के के नीचे उतर रही हैं, उनका स्वाद मीठा है या खारा, पता नहीं, परंतु लगा उससे तैरने के लिए स्फूर्ति और आती जा रही है। मैं तैरती जा रही हूँ...लगा वर्षों बीत गए, उसमें तैरते हुए। एक स्थल पर जा कर लगा, झील का क्षेत्रफल ख़त्म हो गया, बाहर कैसे निकलूँ समझ नहीं आ रहा। एकाएक घबराहट का घटाटोप! अब क्या करूँ? उन क्षणों में एक अनदेखा अनजाना हाथ मेरी ओर बढ़ा, मैंने डर के मारे उसे पकड़ लिया। लो। अगले ही क्षण में बाहर थी, वहीं सख़्त पत्थर-सा बर्फ का धरातल। मैंने चारों ओर नज़र घुमाई, दूर कहीं एक दैत्याकार-सा ऊँचा भूधर था, उस क्षण ऊँचाई तक मेरी गर्दन नहीं उठ पा रही थी। मैंने अपने उस हमदर्द को देखने के लिए अपनी नज़र घुमाई, वहाँ चारों ओर बियावान नीरव सन्नाटे के अतिरिक्त कुछ नहीं था। कौन था जिसने मुझे झील से बाहर निकाला? इधर उधर कोई नहीं? अचानक एक भय मेरी चेतना को ग्रसने लगा और... तभी मेरी आँख खुल गई। मैं अपनी शयन शैया पर एकदम सुन्न-सी अवस्था में हूँ; मैं अपने हाथ उठाने का प्रयास करती हूँ तो वे इतने भारी हैं कि हिलते ही नहीं; पैर तो जैसे हैं ही नहीं। धीरे-धीरे मैं अपनी आँखें खोलती हूँ और कमरे के परिवेश को

महसूस करने की चेष्टा करती हूँ। धीरे-धीरे चेतना लौटने लगती है और काफ़ी समय के बाद मेरी देह सामान्य-सी हो पाती है। मैं धीरे-धीरे सप्रयास करवट बदलती हूँ और मेरी चेतना जीवन की वास्तविकता से जा टकराती है। अच्छा! यह तो मात्र एक स्वप्न था। ऐसा स्वप्न? मैं अपने स्वप्न पर आश्चर्यचकित हूँ। मंगल ग्रह पर मिली झील अनाटर्किटा के सैकड़ों मील नीचे बनी बास्टक झील की तरह हो सकती है और उसमें तरल जल हो सकता है, यह वैज्ञानिकों का अनुमान है, यह कितना सच है या संभव, अभी इस पर और अधिक अनुसंधान होगा।

पर मैं तो मंगल ग्रह पर मिली झील में तैर रही थी? मंगल ग्रह पर जीवन होगा या नहीं, यह भी अभी शोध का विषय है परंतु स्वप्न में मैंने यह सब कैसे देख लिया, मेरे पास बताने के लिए कोई कारण या स्पष्टीकरण नहीं है। मंगल ग्रह धरती से इतना दूर है कि भारत के मंगल यान को इसके समीप जाने में वर्ष भर का समय लगा था। स्वप्न में मेरी चेतना के सामने न ही दूरी बाधा बनी और न ही समय।

नारद जी प्रायः ऐसे ही ग्रहों पर आते-जाते थे, जिसे हम कपोल कल्पना से अधिक कुछ नहीं मानते। मेरा यह स्वप्न मनोरंजन के अलावा कुछ नहीं हो सकता। परंतु स्वप्न ही सच होते हैं। जब मैं नहीं होऊँगी, तब भी हमारे वैज्ञानिक इन रहस्यों को सुलझाने के लिए क्रियाशील रहेंगे। वह अवश्य मानवता के लिए ऐसे स्वप्नों को सच कर दिखाएँगे।

❑

Dr. Parmod Malik

Right to Health of Women : A Case Study of Tubal Ligation in India

Mumbai : Ten women have died in the city in 2015-16 after undergoing tubectomy, the female sterilization surgery that is promoted as safe and one of the most reliable family planning methods by government[1].

Tubal ligation is one of the methotds of birth control. Government also give an incentive to the people who come for all these birth control operations but report of failure and death rates put some question mark about this. It is a matter of concern that no one is responsible or accountable for that. It is also matter of concern whether the victim of all these entitled to compensation because of failure of such operations .

As per World Health Organization, Health is a state of complete physical, mental and social well-being and not merely the absence of disease.[2] If you see this definition from layman perspective, it is negative definition as most of us think right to health comes only when there is a presence of disease.

India has guaranteed various social rights in its Constitution under a special sections entitled Directive Principles of State Policy. India reaffirmed its commitment to the people that protection of its people's health is an important public policy.

Indian Constitution and Right to Health

The Constitution of India and its various provisions provide this right directly to its citizens.

Article 21 of Indian Constitution says that no person shall be deprived of his life or personal liberty except according to the procedure established by law. The framers of Indian Constitution have rightly inserted various provisions regarding health of people. Article 38 says that the State shall strive to promote the welfare of the people by securing and protecting as

effectively as it may a social order in which justice, social, economic and political, shall inform all the institutions of the national life

Article 39 (e) states that the health and strength to workers, men and women, and the tender age of children are not abused and that citizens are not forced by economic necessity to enter avocations unsuited to their age or strength;

Article 47 of Indian Constitution has given the duty to the State to raise the level of nutrition and the standard of living and to improve public health. The State shall regard the raising of the level of nutrition and the standard of living of its people and the improvement of public health as among its primary duties and, in particular, the State shall endeavour to bring about prohibition of the consumption except for medicinal purposes of intoxicating drinks and of drugs which are injurious to health

Article 51(A) (j) has imparted on us fundamental duty that to strive towards excellence in all spheres of individual and collective activity so that the nation constantly rises to higher levels of endeavour and achievement. This duty can be performed when we become healthy. It is the social obligation and fundamental duty special in Article 51 A of Indian Constitution

International Conventions relating to Public Health

The first expression of right to health in an international legal instrument came in the constitution of the World Health Organization in 1946. This first declaration of right to health was followed by many declarations and treaties that proclaimed the existence of the right to health such as Article 25 of the Universal Declaration of Human Rights, Article 12 of International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, declaration of Alma Ata 1978 and World Health organization declaration, 1998 adopted by the World Health Assembly.

The Provisions of Universal Declaration of Human Rights[3] state that, everyone has a right to a standard of living, adequate for the health and well-being of himself including food, clothing, house and medical care and necessary social services. It guarantees that right to health, medical care and same as was read into Article 21.

Article 12 of International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights, 1966 states that the health is one of fundamental basic need of all human beings and it recognizes the right to the enjoyment of the highest attainable standard of physical and mental health.

The WHO Expert Committee report says 'the much higher rate of mother and child mortality and mobility in developing areas are mainly due to result of poor nutrition, widespread infection and hazardous and excessive reproduction due to inadequate medical care, supervision and treatment.

So we can say that health is universally recognized as essential to

human condition. The Preamble of the Constitution of the WHO provided the first documentary recognition of the right to health, which guaranteed highest attainable standard of Health as human right. The human rights law under the Universal Declaration of Human Rights was legally enforced by article 12 of the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights. The World Health Declaration adopted 1998 provided the Framework for the development of future policy for health for all in the 21st century. So we can say that today, many international human right instruments address health and health related issues.

Role of Judiciary and Right to Health

Judiciary is performing commendable job in interpreting the provisions of law[4]. A woman having undergone a sterilization operation becomes pregnant and delivers a child, is entitled to compensation is concluded by judgments of the Supreme Court. In Parman and Katara vs. Union of India[5], the honorable Supreme Court held that it is the professional obligation of all doctors whether government or private to extend medical aid to the injured person immediately to preserve life. Kirloskar Brothers Limited versus ESI Corporation[6], the Supreme Court held that the right to health is fundamental right of workmen which is available against state as well as private industries.

Paschim Bangal Khet Mazdoor Samity vs. State of West Bengal[7], the Supreme Court held that Article 21 imposed obligation on the State to safeguard the right to life of every person which includes right to health. In State of Punjab vs. Mahendra Singh Chawla[8], the Supreme Court held that right to health is integral to right to life, government has constitutional obligation to provide health facilities. In Vincent Panikurlangara Vs. Union of India[9], Supreme Court has formed the principle, Public Health to be a matter of top priority and it is a constitutional obligation of the state to provide adequate Medical Services to the people to preserve human life.

In State of Punjab vs. Shiv Ram & Others[10], Supreme Court held that merely because a woman having undergone a sterilization operation becomes pregnant, does not mean that there was any medical negligence or deficiency in performing surgery. That the tubectomy operation can fail and simply because the operation failed, does not entitle the woman to claim compensation. The surgeon cannot be held liable in contract unless the plaintiff alleges and proves that the surgeon had assured 100% exclusion of pregnancy after the surgery and it was only on the basis of such assurance that the plaintiff was persuaded to undergo surgery, since, it was probable that no responsible medical man would intend to give such a warranty.

Compensation for Tubectomy and Vasectomy Victims

The tubectomy and vasectomy (sterilization) programme in India is voluntary in nature and the couples choose a method best suited to them.

During the year 2013-14, 4092806 sterilisation operations have been performed in the country. The government provides compensation in case of death/failure of tubectomy and vasectomy operation as per details is given below:

Family Planning Indemnity Scheme.

Section		Coverage	Limits
I	IA	Death following sterilization *(inclusive of death during process of sterilization operation)* in hospital or within 7 days from the date of discharge from the hospital.	Rs. 2,00,000
	IB	Death following sterilization within 8-30 days from the date of discharge from the hospital.	Rs. 50,000
	IC	Failure of Sterilization	Rs 30,000
	ID	Cost of treatment in hospital and up to 60 days arising out of complication following Sterilization operation *(inclusive of complication during process of sterilization operation)* from the date of discharge.	Actual not exceeding Rs 25,000
II		Indemnity Insurance per Doctor/facility but not more than 4 cases in a year.	Up to Rs. 2,00,000/- per claim

The largest study on tubal ligation, U.S. Collaborative Review of Sterilization, indicates 1 out of every 54 tubal ligation procedures will fail and result in pregnancy. Government must ensure conditions in which everyone can be as healthy as possible. If we want justice and human right in reproductive health, Men should also play a greater role in family planning and relieve their partners some of the burden of contraceptive use. It is good act on the part of the state to provide compensation to those persons whose operation failed. This financial help give them relief or access to medicine. But side by side, scientists must work on the new method of sterilization so that old technique operations not be used in future.

❑

Footnotes

1. Preamble of WHO Constitution
2. Article 25 of UDHR 1948
3. Khan Mhd. Azmal, Right to Health, law and policies in India, IJLS, vol. 6 no. 6
4. AIR 1989 SC 2039, 5. 1996 (2) SCC 682, 6. 1996 (4) SCC 37
7. 1987 SCC 1225, 8. AIR1987 SC 990. 9. AIR 2005 SC 1
10. Union of India vs. Smt. Omwati, NCDR, October 3, 2102

डॉ. परवेश सक्सेना

सन्तोष खन्ना का 'सेतु के आर-पार' नाटक : अनुवाद विधा का अनोखा नाट्यकरण

'सेतु के आर-पार' कितना काव्यात्मक शीर्षक है। पर यह कविता-संग्रह नहीं; अपितु एक संपूर्ण नाटक है -- पाँच अंकों में निबद्ध जिनमें प्रथम अंक में 3, द्वितीय में 3, तृतीय में 2 और चौथे-पाँचवें अंकों में एक-एक दृश्य है। 'सेतु' अर्थातृ पुल -- इस पार से उस पार जाने का साधन, यात्रा को सरल-सुविधापूर्ण बनाने का उपक्रम। सेतुबंध कई प्रकार के होते हैं, नाले पर, नदी पर, समुद्र पर या फिर सड़क पर (जिन्हें फ़्लॉई ओवर) कहते हैं। पर साहित्य के संसार में एक विशिष्ट सेतु होता है 'अनुवाद विधा' का सेतु। सच ही यह एक ऐसी विधा है जो भाषा-साहित्य-संस्कृति के मध्य सेतु का कार्य करती है। प्राचीनतम सभ्यताओं, संस्कृतियों, ज्ञान-विज्ञान के विराट् वाङ्मय को इसी विधा के माध्यम से वर्तमान तक पहुँचने का अवसर मिला है।

हम सब जानते हैं यह अनुवाद कहने में जितना सरल लगता है करने में उतना ही कठिन होता है। कारण कि देश, स्थान, काल के भेद से संस्कृतियाँ भिन्न होती हैं। उनको अभिव्यकित देने वाले काव्य या अन्य साहित्यिक ग्रंथ भी अपने शिल्प-रूप-कलादि की दृष्टि से भिन्न ही होते हैं। यही कारण है कि अनुवाद के पक्ष-विपक्ष दोनों में ही अनेकानेक आयाम रहे हैं। यूँ भी चिर वैदिक काल से लेकर आज की 21वीं सदी तक अनुवाद विधा के विकास के ढ़ेरों रूप, अनेक आयाम मिल जाएँगे। छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र पर जैसे शास्त्रीय ग्रंथ हर भाषा में लिखे गए हैं और आज भी लिखे-पढ़े जा रहे हैं लेकिन 'अनुवाद-विधा' पर प्राचीन शास्त्रीय ग्रंथ तो अभी तक नहीं प्राप्य हैं या कहें लिखा ही नहीं गया। इस सदी की विशेषता रही है कि कविता लेखन, कहानी-लेखन के कार्सेज़ चलाए जा रहे हैं जो प्राचीन युग में सोचने के परे ही थे। 'अनुवाद' के पाठ्यक्रमों को लेकर भी सामग्री अलग-अलग भाषा-साहित्य के लिए तैयार कर ली ही

गई है। पर 'अनुवाद' जैसी विशिष्ट विधा सिखाने-पढ़ाने से सरलतापूर्वक नहीं आती। अतः अभ्यास से ही उसके विभिन्न आयामों को जाँचा-परखा जा सकता है। परंतु सन्तोष खन्ना ने अपने इस नाटक के माध्यम से अनुवाद विधा को सिखाने-पढ़ाने का एक नूतन प्रयोग किया है। अनुवाद विधा को कथ्य बना कर एक संपूर्ण नाटक की रचना कर डालना कल्पनातीत लगता है। श्रीमती सन्तोष खन्ना ने इस असंभव को कैसे सरलता और सहजता से से संभव कर दिखाया, जान कर और पढ़ कर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। सर्वत्र नाटक में हास्य-व्यंग्य की भरमार नाटक को उच्च कोटि की रोचकता प्रदान करती है।

श्रीमती सन्तोष खन्ना का जीवन कई प्रकार से 'अनुवादमय' रहा है। कैरियर में अनुवाद संबंधी बहुत से दायित्व निभाए हैं। उन्होंने भारतीय अनुवाद परिषद की 'अनुवाद' पत्रिका का संपादन, इसी संस्था की भाषणमाला 'अनुवादक से संवाद' का दशकों से संचालन तो किया ही है, 'वाक्सेतु' डिप्लोमा पाठ्यक्रम के प्रारंभ से उसके संकाय सदस्य के रूप में जुड़ी हुई हैं। अतः प्रस्तुत नाटक 'सेतु के आर-पार' के लेखन की आधिकारिता उनके पास है। 'सेतु के आर-पार' नाटक इस प्रकार विषय-वस्तु की दृष्टि से एक विलक्षण प्रयोग है। अनुवाद-विधा, उसके विभिन्न रूप, सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्षों की यहाँ सरल भाषा में रोचकता से प्रस्तुति की गई है। यही नहीं, इसका शिल्प विधान और अंक (दृश्य) भी विचित्र पृष्ठभूमि में उभरते हुए प्रतीत होते हैं।

चित्रगुप्त यमलोक में मनुष्य के कर्मों का लेखा-जोखा लिखने वाले देव हैं। कायस्थों के पूर्व-पुरुष के रूप में इन्हें सब जानते हैं। नाटक के प्रथम अंक के प्रथम दृश्य में परंपरागत परिधान में चित्रगुप्त ही सर्वप्रथम विराजमान दिखते हैं। उनके सामने सावधान मुद्रा में खड़े -- महादूत और कुछ यमदूत। उनके दरबार में जंजीरों में जकड़े कुछ व्यक्ति खड़े हैं। प्रभामंडल से वे साहित्यकार लगते हैं पर वास्तव में वे अनुवादक हैं। अनुवादकों को प्रारंभिक युग में 'प्रवंचक' माना जाता था। इतालवी में तो 'त्रादू तोरे-त्रादीतोर' का अर्थ ही प्रवंचक-कर्म करने वाला है। चित्रगुप्त महादूतों व यमदूतों के संवादों के द्वारा 'अनुवाद' की नकारात्मकता को सुनते हैं तो दूसरी ओर पकड़ कर लाए गए अनुवादकों के मत को समझने का प्रयास करते हैं। लेखिका की कल्पना में चित्रगुप्त जैसे न्यायाधीश के सामने कटघरे में अनुवादक खड़े हैं। मुकदमा या वाद लड़ा जा रहा है क्योंकि लेखिका वकालत के पेशे से भी जुड़ी रही हैं और उन्हें न्यायाधीश के रूप में कार्य करने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। वह 'विधि भारती परिषद' जैसी पत्रिका का संपादन करती आ रही हैं। अतः उन्होंने अनुवादक जाति के विरुद्ध आरोपों के 'वाद' के माध्यम से नाटक में एक विलक्षण अवधारणा प्रस्तुत की है।

अपनी कल्पनाशीलता से नाटककार सन्तोष खन्ना ने 'अनुक', 'अनुका' तथा 'अनुकवाद' जैसे शब्दों को अनुवादक, अनुवादिका और अनुवाद संबंधी वाद के लिए प्रयुक्त किया है। 'अनुवाद' करना अपराध नहीं, अनुवादक प्रवंचक नहीं, निष्पक्ष चित्रगुप्त यही सिद्ध करते हैं। अरोप-पत्र, सुनवाई और साक्षियों के साक्ष्य लिए जाते हैं। प्रतिवादी को अपना पक्ष रखने का अवसर भी दिया जाता है। पर यह सब प्रक्रिया लंबी है तथा पाँच अंकों के सात दृश्यों में उसे प्रस्तुत किया गया है।

विदुषी लेखिका ने वेद-उपनिषद्, अष्टाध्यायी ही नहीं, बाइबिल के उदाहरणों से भी 'अनुवाद' विधा की प्राचीनता सिद्ध की है। उचित ही अनुक (1) (पृ. 18) से कहलवाया गया है--

'अनुवाद के लिए स्रोत भाषा और लक्ष्य भाषा में निष्णात होना निहायत ज़रूरी है।' फिर अनुवाद के उद्देश्य पर भी बहुत प्रकार के उदाहरणों से प्रकाश डाला गया है। प्राचीनतम संस्कृत जैसी शास्त्रीय भाषाओं के अनुवादों से ही वह विरासत हम सब तक पहुँची है। इसके सिद्धांतों का एक विख्यात जानकार -- 'सिद्धांतकार' जैसा पात्र भी कल्पित किया गया है। वह अनुवादकों के विरुद्ध लगाए गए आरोपों का निराकरण करते हुए उसे 'परकाया प्रवेश' की संज्ञा देता है। अनुवाद 'एक सुंदर पुष्प की सुगंध को दूसरे सुंदर पुष्प में उँढेलने की कला है' -- सिद्धांतकार के मुख से ऐसी परिभाषा सन्तोष खन्ना जैसी कवयित्री ही करवा सकती हैं। यही पर 'साहित्यकार' जैसे पात्र का प्रवेश होता है। स्वभावतः साहित्यकार का अपना दृष्टिकोण है -- 'सृजन प्रक्रिया मन के भीतर चलती है।' 'एक ही रचना के अनुवाद बार-बार होते ही हैं। उसकी दृष्टि में अनुवाद को कला तो माना जा सकता है परंतु विज्ञान नहीं।' सिद्धांतकार उसे शिल्प, कला, विज्ञान तीनों ही मानता है। अनुवाद के क्षेत्र में एक और समस्या आती है जब अनुवादक रचनाकार की कृतियों का अनुवाद करता है पर उसे मूल रचनाकार के समान पारिश्रमिक नहीं मिलता। अनूदित रचना को जब पुरस्कार मिलता है तो अनुवादक के नाम का उल्लेख भी नहीं करना बहुत अन्यायपूर्ण लगता है। अनुवाद के सेतु से पुरस्कार की मंज़िल तक पहुँचना फिर अनुवादक को भूल जाना किसी तरह क्षम्य नहीं। इस संदर्भ में तुलसीदास का रामचरितमानस तथा गीताकार की उपस्थिति भी प्रथम अंक में यही समस्या उठाती है। गीता के 'यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानि...' जैसे श्लोक का तुलसी ने हूबहू अनुवाद किया 'जब जब होई धर्म की हानि...' अन्यत्र भी पुराणादि के प्रसंगों को संस्कृत से अवधी में रूपांतरित कर दिया है, परंतु गीताकार या पुराणकार का उल्लेख नहीं किया है। परंतु लेखिका का यही मत है कि रामायण प्रसंगानुसार, कालानुसार कई स्रोतों से अपने को समृद्ध करती रही है, सबका नामोल्लेख करना ज़रूरी नहीं।

मूल लेखक या रचनाकार को तो सृजन-सुख मिलता है पर क्या अनुवाद में भी अनुसृजन-सुख निहत है।' लेखिका उसे 'पोषण-सुख' मानती हैं। देवकीनंदन को यशोदा ने पाला। दोनों ने सुख पाया।

नाटक के दूसरे अंक में सृजनशीलता की परीक्षा के लिए 'अनुवादकार्य' की परीक्षा ली जाती है। अंग्रेज़ी से हिंदी में अनुवादों के रोचक रूप प्रस्तुत हुए हैं। यथा 'He delivered the letter to the hospital' का अनुवाद उसने अस्तपताल में पुत्र को जन्म दिया' -- हास्य रस की निष्पत्ति करने में समर्थ है। जर्मन भाषा से अंग्रेज़ी में अनुवाद की बानगी भी रोचक है। मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियों के अंग्रेज़ी अनुवाद भी कहीं शाब्दिक हो जाते हैं तो कहीं चमत्कारपूर्ण! ऐसे अनुवादकर्ता भी हैं जिन्हें त्रिशंकु कहा जा सकता है। 'कहीं वे दूसरे की कृति पर अपना नाम जड़ देते हैं, तो कहीं अपनी कारीगरी दूसरे को मढ़ देंगे! पर ये त्रिशंकु अपने मत की सफाई में यही कहते है कि वे तो पाठकों/दर्शकों को कलाकार विशेष से परिचित करना चाहते हैं इसीलिए अनुवाद करते हैं। शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवाद की परंपरा बहुत समृद्ध है। आरोप है ये अनुवाद मूल निष्ठ नहीं रहे हैं। अनुवादकों का मानना है कि लाला संत राम, रांगेय राघव के अनुवादों के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता। वास्तव में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने ही ऐसी शुरूआत की। शेक्सपीयर के नाटक 'मर्चेंट ऑफ वेनिस' का 'दुर्लभ बंधु' शीर्षक से अनुवाद किया और पात्रों का भारतीयकरण भी किया। परंतु इसी ने भाषा-विकास और राष्ट्र जागरण की प्रवृत्ति को प्रेरित किया। वास्तव में काल और परिवेश की माँग भी तब यही थी।

हरिवंश राय बच्चन के पद्यानुसार भी शेक्सपीयर के नाटकों के के पद्यानुवाद भी प्रसिद्ध रहे हैं। शेक्सपीयर की एक प्रसिद्ध पंक्ति के अनुवादों की भिन्नता भी द्वितीय अंक में प्रस्तुत की गई है। वह पंक्ति हैं -- 'To be or not to be', That is the question'.

अनुवाद

(क) होना है या न होना -- यही प्रश्न है। (रांगेय राघव)

(ख) रहना या नहीं रहना है, यही सवाल है। (अमृत राय)

(ग) जीना हे या मरना है, तय करना है। (बच्चन)

परंतु सबसे अच्छा अनुवाद निशिकांत मिश्र राज दिव्य का कहा जा सकता है--

भवतु किं वा न भवतु', यही शाश्वत प्रश्न है, पर संस्कृतनिष्ठ होने के कारण -- यह भी बहुतों को स्वीकार्य नहीं होगा। ये सब दृश्य यमलोक में नहीं -- मृत्युलोक धरती में प्रस्तुत किए गए हैं। स्वच्छंदतावाद, छायावाद की चर्चा भी अनुवाद के परिप्रेक्ष्य में की गई है।

सबसे महत्त्वपूर्ण है कि चौथे अंक में वर्णित अनुवाद का सबसे निकृष्ट और अनैतिक प्रयोग। विदेशी उपनिवेशवादी लोगों ने अपने को भारत में स्थापित करने की मंशा से हमारी संस्कृति के आधारभूत ग्रंथों के मनमाने ढंग से अनुवाद किए तथा भारतीयों को 'असभ्य' और 'हीन' करार दिया। सच ही यह अनुवाद जैसी लोकहित विधा का दुष्ट प्रयोग था, पाप था। इन अनुवादों के कारण स्वयं भारतीय अपने को हीन समझने लगे और पाश्चात्य संस्कृति-सभ्यता के भक्त बन गए, उपनिवेशवादी व्यवस्था का गुणगान करने वाले बन गए।

इस प्रकार प्रस्तुत नाटक में अनुवाद से संबद्ध सभी पक्षों का समुचित वर्णन हुआ है। प्रश्न उठाए गए हैं, समस्याएँ उठाई गई हैं तो उनके उत्तर और समाधान भी सुझाए गए हैं। अनुवाद विधा पर आधृत इस नाटक में आधुनिक युग की विकट समस्याओं की ओर भी संकेत स्वयंमेव आ गए हैं जैसे पुत्री-जन्म शोक, चरण-चुंबन चाटुकारी-संस्कृति या लचर न्याय-व्यवस्था अथवा पुरस्कार मोहादि या फिर भारत विभाजन की त्रासदी! ये संदर्भ एक ओर इस गंभीर नाटक को रोचक और व्यापक बनाने में योगदान करते हैं तो दूसरी ओर इसकी विश्सनीयता बढ़ाते हैं। गंभीर विषय की रोचकता बढ़ाने के लिए 'हास्य रस' का पुट भी खूब अच्छे से दिया गया है।

अंतिम अंक में 'अनुवाद बोध' की महत्ता बताते हुए यमदूत के माध्यम से ही कह दिया गया है --

'न रोक अनुवादक को तू यहाँ
जाने दो उसको स्वर्ग धाम
वह जिया हमेशा परहित में
कर त्याग तप किया महा काम
भाषाएँ जोड़ी सिर जोड़े
बना दिया विश्व को एक ग्राम!

यूँ 'अनुवादक' समापन शुभ हो जाता है!

अंत में दो शब्द नाटक के शिल्प पर! प्रारंभ में सभी पात्रों की सूची तथा मंचन या अभिनय के निर्देश और वेशभूषादि के विषय में स्पष्ट संकेत देने से नाटक की उपयोगिता में वृद्धि होगी क्योंकि नाटक है तो मंचन भी ज़रूरी है। हाँ, मंचन योग्य बनाने के लिए संवादों का संक्षिप्तीकरण भी करना होगा। विदुषी लेखिका को एक अनछुए विषय पर इतनी सुंदर नाट्य-रचना प्रस्तुत करने पर हार्दिक बधाई।

❑

समीक्ष्य पुस्तक : 'सेतु के आर-पार' (नाटक), नाटककार : सन्तोष खन्ना, प्रकाशक : हेमाद्रि प्रकाशन, मूल्य 250/-रुपए, पृष्ठ 120

डॉ. निशा केवलिया शर्मा

मीडिया का वर्तमान स्वरूप एवं आचार संहिता

भारत में लोकतंत्र है इसलिए भारत का मीडिया भी स्वतंत्र है। मीडिया समाज का दर्पण एवं दीपक दोनों हैं। समाज में बदलाव एवं विकल्प उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में समाज में कई बार असमंजस की स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। मीडिया और समाज एक दूसरे के पूरक है और इसीलिए एक-दूसरे को प्रभावित भी करते हैं। मीडिया को समाज से अलग करके नहीं देखा जा सकता है।

मीडिया का विकास सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन, राजनैतिक परिवर्तन, सांस्कृतिक परिवर्तन, बौद्धिक परिवर्तन, शैक्षणिक परिवर्तन आदि पर निर्भर करता है। मीडिया का विकास समाज से प्रभावित होकर सामाजिक हितों को प्रभावित करता है। अतः समाज और मीडिया में अंतः संबंध है जो मीडिया के वर्तमान स्वरूप को निर्धारित करता है।

मीडिया का वर्तमान स्वरूप : भारतीय संवैधानिक व्यवस्था लोकतंत्रात्मक है और लोकतंत्र का प्रमुख आधार विचारों एवं भावनाओं की अभिव्यक्ति है। मीडिया अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है और वर्तमान में यह विकासशील होते हुए अपने आधुनिकतम रूप में कार्य कर रहा है।

परंतु वर्तमान में जब चारों और व्यावसायिकता की होड़ है और समाज में भ्रष्टाचार, शिष्टाचार के रूप में स्थापित हो गया है तो स्वयंभू लोकतंत्र का चतुर्भ स्तंभ मीडिया भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं हैं। वर्तमान में मीडिया दिगभ्रमित हो रहा है और यह चतुर्भ स्तंभ भ्रष्टाचार की मार से लड़खड़ाया हुआ है। मीडिया का आत्मसंयम छूट रहा है।

इंडियन एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स (बंबई) प्रा. लि. और अन्य,[1] सकल पेपर्स प्रा.लि. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया,[2] एक्सप्रेस न्यूज पेपर्स प्रा.लि. बनाम यूनियन ऑफ इंडिया[3] आदि मामलों के अंतर्गत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता[4] के अंतर्गत मीडिया/प्रेस की स्वतंत्रता को सम्मिलित माना गया है। लेकिन प्रेस की स्वतंत्रता निवधि[5] नहीं है। यह राज्य की सुरक्षा,

लोक व्यवस्था, मानहानि, न्यायालय की अवमानना अपराध उद्दीपन, नैतिकता, भारत की एकता एवं अखंडता आदि को दृष्टिगत रखते हुए प्रतिबंधित की जा सकती है। प्रेस/मीडिया को लोकतंत्र का 'चतुर्थ स्तंभ' माना गया है इसलिए मीडिया के सामाजिक दायित्व व्यावसायिकता से ऊपर है।

वर्तमान में मीडिया व्यावसायिकता की अंधी दौड़ में शामिल होकर सामाजिक एंव नैतिक मापदंडों को कहीं पीछे छोड़ चुका है। फूहड़ता, भाषा की मलिनता, सामाजिक व्यवस्थाओं का विघटन नैतिकता के मानदंडों का उल्लंघन आदि का सामाजिकरण मीडिया द्वारा किया जा रहा है। यह एक पूरी पीढ़ी को संवेदनाशून्य एवं अनैतिक बनाकर मात्र भौगिक बनाने का कार्य आधुनिक मीडिया द्वारा किया जा रहा है। मीडिया का यह चेहरा नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन तो कर ही रहा है, साथ ही स्वयं द्वारा निर्धारित आचार संहिताओं का भी पालन मीडिया द्वारा नहीं किया जा रहा है।

मीडिया को वर्तमान में मात्र स्वयं द्वारा निर्धारित आचार संहिता का अनुपालन सुनिश्चित कर सामाजिक दायित्वों का निर्वहन करने की आवश्यकता है और पुनः मिशन की और उन्मुख होना है।

मीडिया की आचार संहिताएँ : एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया की पत्रकारों के लिए आचार-संहिता[5] : एडीटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया के ब्रिटेन की सोसायटी ऑफ एडीटर्स की संहिता के आधार पर भारतीय अनुभवों के प्रकाश में पत्रकार आचार संहिता का निर्धारण किया गया है। 19 दिसंबर, 2002 को इंडिया इंटरनेशनल सेंटर द्वारा जारी की गई 22-सूत्रीय संहिता इस प्रकार है --

1. संवाददाताओं द्वारा भेजी जाने वाली रपटों के तथ्यों की जाँच हो और गलतियों को संदर्भ पुस्तकालय की मदद से सुधारा जाए। हर प्रकाशन इस तरह के संदर्भ पुस्तकालय की अवश्य व्यवस्था करें। अनुमानों को तथ्यों के छद्मावरण में पेश करने की अनुमति नहीं होनी चाहिए।
2. तथ्यों को प्रत्यक्ष या उपलक्षित बयानों से अलग करें और तथ्यों को उनकी निर्धारित जगह पर ही रखें। बयानों को निर्धारित स्थान पर रखें और अगर उन्हें तथ्यों के साथ जगह देनी है तो यह सुनिश्चित करें कि वे बयान ही रहे।
3. प्रकाशन के अधिकार को सर्वोच्चता देने से पहले इसे सार्थक 'जनहित' के साथ जाँचे।
4. ऐसे निराधार आरोपों या वक्रोक्तियों को हटा दें जो खबर के लिए जरूरी नहीं है या फिर उन्हें तभी खबर में रहने दें जब इसके मानहानि संबंधी पक्ष को पूरी तरह से जाँच लिया गया हो।

5. पर्याप्त समय सीमा के तहत पीड़ित पक्ष को अपना जवाब देने या खबर के खंडन का पूरा मौका दें।
6. जहाँ माफी माँगना जरूरी हो, सहर्ष स्पष्टता और पूरी मर्यादा के साथ इसे प्रस्तुत करें।
7. अगर मानहानि की कार्यवाही शुरू होती है तो पूरी निष्पक्षता और कानून को पूरा सम्मान देते हुए इसकी खबर छापे।
8. अगर आम लोगों के हितों को स्पष्टता कोई खतरा न हो तो किसी व्यक्ति के निजी मामलों को अनावश्यक प्रचार देने से बचें। पर अगर ऐसा है, तो इस मामले को पूरी तन्मयता से बिना किसी डर के अंजाम दें, लेकिन ऐसा शालीनतापूर्वक एवं अच्छे भाव से किया जाए। स्त्रोतों को परेशान करने या डराने-धमकाने से बचें।
9. किसी खबर में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने के लिए उसमें अतिश्योक्ति से बचें। एक सीमा से आगे अतिश्योक्ति तथ्यों को विकृत कर देती है वास्तविकता पर आधारित खबरें सनसनीखेज खबरों की तुलना में ज्यादा टिकाऊ होती हैं।
10. सरकारी कर्मचारियों के खिलाफ कर्त्तव्यों की कोताही संबंधी आरोप लगाने से पहले इसे दुबारा जाँचना-परखना चाहिए, क्योंकि उनके सेवा संबंधी नियम उन्हें जवाब का अधिकार नहीं देते, और सिर्फ सरकारी दस्तावेज की उनकी मदद के लिए रहता है पर अगर इन खबरों के आधार पुख्ता है तो यह निर्भीक हों न कि शेखी बघारने वाला या बचकाना।
11. दबाव में आकर तथ्यों को दबाना, कर्त्तव्य से चूकना है।
12. ऐसे बयान या तथ्य तो नाम न बताये जाने की शर्त पर प्राप्त हुए है, उनमें नाम कतई नहीं दिया जाना चाहिए।
13. अपने स्त्रोतों को कानून की अन्तिम हद तक बचाने के अधिकार का प्रयास करते हुए गुमनामी को झूठ या परोसने के लिए लवादे के रूप में प्रयोग की अनुमति नहीं दी जाए। पत्रकारों को ऐसे स्त्रोतों के बारे में एक-दूसरे को सावधान करना चाहिए जो गुमनाम रहकर भ्रम फैलाते हैं।
14. निजी दुःख वाले दृश्यों से संबंधित खबरों का संपादन नाजुक होता है, लेकिन मानवीय हितों के नाम पर उन्हें आँख मूँदकर नहीं परोसा जाए। मानवाधिकार भी उतने ही महत्वपूर्ण है और इनके साथ-साथ भावनाओं की गोपनीयता का भी इनमें उतना ही महत्व है।'
15. पत्रकारों के सूचना के अधिकार का प्रयोग निजी लाभ प्राप्त करने के शक्तिशाली साधन के रूप में हो सकता है; पर ऐसा कभी नहीं होना चाहिए।

16. धार्मिक विवादों पर लिखते समय सभी संप्रदायों व समुदायों को समान आदर दिया जाना चाहिए। इस तरह के व अन्य विवादों में सभी पक्षों के बारे में समान रूप से निष्पक्ष रिपोर्टिंग हो।

17. आपराधिक मामले की रिपोर्टिंग में विशेषकर सेक्स और उससे भी अधिक बच्चों से संबंधित मामलों की रिपोर्टिंग में यह ध्यान देना जरूरी है कि रिपोर्ट अपने आप में ही सजा न बन जाए जो किसी जीवन को अनावश्यक ही बर्बाद कर दें। कथित अपराधी, पीड़ित और गवाहों की पहचान अवश्यक हो तो बहुत सावधानीपूर्वक की जानी चाहिए और इसमें लोगों के वर्ण या उनकी जाति पर कोई लांछन नहीं हो। जनहित के सर्वाधिक मजबूत आधार पर ही इन बातों को कमतर किया जाए।

18. **'चेकबुक जर्नलिज्म'** या पैसा देकर सूचना लेना पाप की कमाई की तरह है। ऐसा 'जनहित' में आवश्यक सूचना प्राप्त करने के लिए कोई विकल्प नहीं बचने की स्थिति में ही किया जाए। अगर ऐसा करना पड़ता है तो भुगतान की जानकारी किसी भी स्वीकृत वैध रूप में दी जाए एवं यह भुगतान उन लोगों को कतई नहीं किया जाए जो इससे संबंधित कानूनी मामले में जुड़े हुए हैं। वित्तीय पत्रकारिता को बाजार के साथ खिलवाड़ से मिश्रित नहीं किया जाए।

19. चोरी-छिपे सुनकर (और फोटो लेकर), किसी यंत्र का सहारा लेकर, किसी के निजी टेलीफोन पर बातचीत को पकड़ कर अपनी पहचान छिपाकर या चालबाजी से सूचनाएँ नहीं प्राप्त की जाएँ। सिर्फ जनहित के मामले में ही, जब ऐसा करना उचित हो, और जब किसी और तरीके से सूचनाएँ प्राप्त नहीं की जा सकें, ऐसा किया जाए।

20. पत्रकारों को ऐसे लोगों या संस्थाओं से किसी भी तरह का लाभ अपने या अपने परिवार वालों के लिए प्राप्त नहीं करना चाहिए जिसकी गतिविधियों के बारे में वह रपट लिख रहे हैं।

21. पत्रकारों को बारी से पहले कम कीमत पर आवास सुविधा या भूमि या इसी तरह की सुविधाएँ प्राप्त नहीं करनी चाहिए।

22. अगर किसी पत्रकार के पेशेगत कारणों से उसके खिलाफ उनके काम करने के स्थान से दूर कोई मामला दायर किया है तो प्रबंधन को उस पत्रकार को कानूनी संरक्षण देना चाहिए ताकि मीडिया को शक्तिशाली लोगों को घृणित कार्यों का पर्दाफाश करने से रोकने के लिए डराने-धमकाने में इसका प्रयोग न हो सके।

अखिल भारतीय समाचार पत्र सम्पादक सम्मेलन (AINEC)[6] की आचार संहिता :

1. मूल मानवीय और सामाजिक अधिकारों का पत्रकार को उचित आदर करना चाहिए।

अपनी वृत्ति या पेशे को पुनीत कर्त्तव्य मानकर समाचार देते समय पत्रकार को हमेशा निष्ठावान और कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए।

2. जातीय, धार्मिक और आर्थिक भेदों से उत्पन्न तनावों के समाचार देते समय या उन पर टिप्पणी करते समय पत्रकारों को खासतौर से अपने ऊपर नियंत्रण रखना चाहिए।

3. पत्रकार यह देखें कि जो कुछ छप रहा है उसमें तथ्य की गलती न हो, कोई हकीकत न तो तोड़ी-मरोड़ी जाए और न ही कोई आवश्यक तथ्य छुपाया जाए। जो कुछ छपे उसकी सारी जिम्मेदारी पत्रकार स्वीकार करें। यदि किसी लेख की जिम्मेदारी अपने ऊपर लेने में असमर्थ हो, तो इसका उल्लेख स्पष्टतः कर दिया जाए।

4. अफवाह और अपुष्ट समाचारों को अफवाह और अपुष्ट समाचर ही लिखा और माना चाहिए।

5. वृत्तीय गोपनीयता की रक्षा पत्रकारों का कर्त्तव्य है और उनकी प्रतिष्ठा इसी पर निर्भर है।

6. पत्रकारिता का व्यक्तिगत हितों की साधना के लिए दुरूपयोग नहीं होना चाहिए।

7. गलत समाचारों का तुरंत और स्वेच्छापूर्वक खंडन किया जाए और यदि ऐसे खंडन की माँग कही से की जाए तो गलत बातों का प्रतिवाद प्राकशित होना ही चाहिए।

8. ऐसे उद्देश्यों के लिए जिनका संबंध पत्रकारिता से नहीं है, इस वृत्ति या व्यवसाय की सहायता लेना उचित नहीं।

9. किसी चीज को प्रकाशित करने या न करने के लिए घूस माँगने या घूस स्वीकार करने से बढ़कर पत्रकार के लिए और कोई बुरी बात नही। समाचारों और तथ्यों के संकलन और प्रकाशन की स्वतंत्रता तथा उचित टिप्पणी करने का अधिकार ऐसे सिद्धांत है, जिनकी रक्षा के लिए पत्रकार को हमेशा तत्पर रहना चाहिए।

10. पत्रकार अनुचित उपायों से अपने सहयोगियों की वृत्ति खराब करने का प्रयत्न न करें और न ही अपनी वृत्तीय स्थिति का किसी काम के लिए दुरूपयोग करें।

11. पत्रकारों ने अपने सहयोगी पत्रकारों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं का सम्मान करना चाहिए।

12. व्यक्तिगत वाद-विवाद समाचार पत्रों में जारी रखना अपनी वृत्ति की प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक मानना चाहिए।

13. किसी के व्यक्तिगत जीवन के संबंध में अफवाहें या निराधार चर्चा प्रकाशित करना पत्रकारिता की मर्यादाओं के प्रतिकूल है। जनहित में किसी के निजी जीवन के बातें प्रकाशित करना जरूरी हो तो भी वे तथ्यपरक और संतुलित होना चाहिए।

टाइम्स ऑफ इंडिया की आचार संहिता[7]

टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन समूह ने अपने प्रकाशनों में कार्यरत् सभी पत्रकारों के लिए एक आचार संहिता बनाई है, जो इस प्रकार है --

1. हमारे पत्रकारों को प्रोफेशनल कारणों से संपर्क में आने वाली कॉरपोरेट बॉडीज या संस्थानों से उपहार, लाभ, ऋण, डिस्काउंट, प्रोफेंशियन शेयर जैसी रियायती सुविधाएँ लेने से बचना चाहिए परंतु मिठाई का डिब्बा, सस्ते पैन, डायरी और कैलेंडर जैसी वस्तुओं से संबंध में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।
2. मुफ्त टिकट, प्रायोजित यात्राएँ और विदेश प्रवास के आमंत्रण संपादक द्वारा अधिकृत होने चाहिए। किसी भी कार्यक्रम या यात्रा के आमंत्रण सीधे व्यक्तिगत तौर पर स्वीकार नहीं करेंगे। संबंधित रपट या लेख के अंत में यह स्पष्ट करने के अतिरिक्त कि कार्यक्रम प्रायोजित था, संबद्ध होटल या आमंत्रित करने वाली संस्था के नाम का साफ-साफ उल्लेख करना चाहिए। राजनीतिक पत्रकारिता की संवेदनशीलता को देखते हुए किसी भी राजनीतिक व्यक्ति या दल का आतिथ्य स्वीकार नहीं करना चाहिए। अपनी आजादी को बनाये रखने के लिए हम नहीं चाहेंगे कि हमारे पत्रकार भारत में किसी सरकारी या गैर सरकारी संस्था की मेजबानी स्वीकार करें। अगर समाचार कवर करने की सुविधा के लिए किसी सरकारी या प्राइवेट कम्पनी या किसी संस्था द्वारा दिए गए ट्रांसपोर्ट का उपयोग करने की जरूरत पत्रकार को पड़ती है तो कम्पनी ट्रांसपोर्ट व्यय का सामान्य दरों पर भुगतान करेगी।
3. प्रत्येक पत्रकार को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उनकी पेशेवर निष्पक्षता व्यक्गित पसंद-नापसंद, मैत्री या विचारधारा से प्रभावित नहीं हो। पत्रकारों को राजनीतिक संगठनों का सदस्य बनने से परहेज करना चाहिए। किसी भी राजनीतिक गतिविधि, सामुदायिक कार्यक्रम प्रदर्शन अथवा सामाजिक उद्देश्य में हिस्सा लेने से यदि अपने पेशेवर कर्त्तव्यों को निभाने में रुकावट पैदा होती है तो ऐसी हिस्सेदारी से बचना चाहिए। अगर कभी पेशेवर दायित्व निभाने में कोई बहुत ही गहरी बाधा पैदा हो रही हो (मसलन ऐसे किसी क्लब या संस्था की खबर करना जिसका वह पत्रकार सदस्य है) तो पत्रकार को चाहिए कि वह सम्पादक का ध्यान इस ओर आकृष्ट करें।
4. किसी व्यक्ति या संस्था को हानि पहुँचाने वाली कोई भी रपट प्रकाशित करने से पूर्व प्रभावित पार्टी से संपर्क करने और उसका पक्ष जानने की हर संभव कोशिश की जानी चाहिए यदि रिपोर्ट तत्काल छपनी आवश्यक न हो तो प्रभावित पार्टी से संपर्क होने तक प्रतीक्षा करना उचित होगा। फिर भी यदि संबंधित व्यक्ति अपना पक्ष देने के लिए उपलब्ध न हो उसका उल्लेख रपट में करना चाहिए।
5. आचार परंपरा के अनुसार पत्रकार अपने स्त्रोत की गोपनीयता की रक्षा कर सकता

है। लेकिन इसकी आड़ में अर्द्धसत्य या सनसनीखेज रपटें नहीं छापना चाहिए। स्त्रोत की जानकारी दिए बिना भी संबद्ध पत्रकार के पास किसी भी शंका या प्रश्न की स्थिति में अपने विभाग प्रमुख अथवा संपादक को रपट की प्रामाणिकता के बारे में संतुष्ट करने के लिए समुचित सूचना और तर्क होने चाहिए। पत्रकारों को अपनी रपट की निष्पक्षता और सच्चाई को सुनिश्चित करने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। परंतु कोई भी गलती होने पर उसे स्वीकार करने और भूल सुधार करने में संकोच नहीं होना चाहिए।

6. जिस कंपनी के शेयर्स पत्रकार के पास हों, उसकी कोई भी स्टोरी करने से पहले विभाग प्रमुख या संपादक को सूचित किया जाना चाहिए। किसी भी पत्रकार द्वारा पहले से ही प्राप्त सूचना के आधार पर की जाने वाली इनसाइडर ट्रेंडिंग इस व्यावसायिक (प्रोफेशनल) संहिता का स्पष्ट उल्लंघन है।
7. किसी भी पत्रकार को सरकारी कोटे के आधार पर रियायती दरों पर फ्लैट या मकान व जमीन नहीं लेनी चाहिए। जिन्होंने पहले से ही सरकारी कोटा के अंतर्गत फ्लैट या मकान या जमीन ले रखी है, उसको उसकी कीमत के साथ पूरा ब्यौरा देना चाहिए। जिन मान्यता प्राप्त पत्रकारों का किराये पर सरकारी आवास मिले हुए है, उनको प्रेस कौंसिल ऑफ इंडिया द्वारा ही में घोषित निर्देशों का पालन करना चाहिए। मसलन कर्मचारी को अपने वेतन में कितना हाउस रेट अलाउंस मिल रहा है, वह सरकार को हर महीने कितनी अलाउंस फीस दे रहा है, हर साल 31 मार्च को अपनी आय और संपत्ति संबंधी विवरण, आवंटन की अवधि पूरी होने पर आवास खाली करने आदि सभी पहलुओं पर उसे संपादक को जानकारी देनी चाहिए।
8. किसी भी पत्रकार के विरुद्ध इस तरह की शिकायतों की जाँच के लिए संपादक द्वारा कुछ वरिष्ठ पत्रकारों की एक सलाहकार समिति गठित की जाएगी।

आपात्काल की आचार संहिता[8]

आपात्काल (1975-77) के दौरान जारी की गई 14-सूत्रीय आचार संहिता इस प्रकार थी --

1. पत्रकार अपनी समाजिक जिम्मेदारी का निर्वाह करेंगे और अपने व्यावसायिक उत्तरदायित्व को ईमानदारी से निभाएँगे।
2. जातीय, धार्मिक और आर्थिक भेदों से उत्पन्न तनावों के समाचार या उन पर टिप्पणी देते समय संयम से काम लेंगे।
3. तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने से बचेंगे और ऐसे किसी समाचार को प्रकाशित नहीं करेंगे जिसकी सच्चाई पर संदेह हो।
4. दुर्भावनावश और सनसनी फैलाने के इरादे से किसी समाचार को प्रकाशित नहीं किया जाएगा।

5. वृत्तिक गोपनीयता की रक्षा पत्रकारों का कर्त्तव्य है और उनकी प्रतिष्ठा इसी पर निर्भर है। विश्वासघाती पत्रकार न केवल अपनी निजी साख खो बैठता है, बल्कि अपने समाचार पत्र एवं संवाद समिति को भी नुकसान पहुँचाता हैं।
6. पत्रकारिता का व्यक्तिगत हितों की साधना के लिए दुरूपयोग नहीं होना चाहिए।
7. गलत समाचारों का स्वेच्छापूर्वक खंडन किया जाए और यदि मांग की जाए तो गलत बातें का प्रतिवाद प्रकाशित होना ही चाहिए।
8. किसी बात को प्रकाशित करने या न करने के लिए घूस माँगना या स्वीकार करना पत्रकार के लिए सबसे बड़ा कलंक है।
9. व्यक्तिगत विवादों में नहीं उलझेंगे और ऐसे व्यक्तिगत विषय को नहीं उछालेंगे जिसमें आम जनता की कोई दिलचस्पी न हो।
10. राष्ट्रीय एकता, निष्ठा, ईमानदारी और आर्थिक तथा सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देंगे।
11. लेकतंत्र, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता के राष्ट्रीय लक्ष्यों को पूरा करने में सहायक होंगे।
12. देश की अखंडता, प्रभुत्ता, सार्वभौमिकता, एकता और सुरक्षा को खतरा पैदा करने वाली खबरों को प्रकाशित नहीं किया जाएगा।
13. अश्लील, अपराध, अवैध गतिविधियों आदि के समाचार प्रकाशित नहीं किए जाएँगे।
14. हिंसा, साम्प्रदायिक दंगों, भाषाई झगड़ों आदि के अतिरंजित समाचारों को प्रकाशित नहीं किया जाएगा और इस संबंध में सिर्फ अधिकृत समाचार प्रकाशित किए जाएँगे।
15. जो कुछ छपा हो उस सबकी जिम्मेदारी लीजिए। व्यर्थ दोषारोपण पाप है। प्रतिष्ठा की हानि करने वाली चीज न छापिये। घूस लेना पाप है।
16. पत्र स्वातंत्र्य या पत्र की शक्ति का व्यक्तिगत उपयोग कभी न कीजिए।
17. अधिक से अधिक मित्र बनाइए। मित्र ऐसे हों जो आपकं आदर के पात्र हों या जिनकी मित्रता से आपका सम्मान बढ़े।

मीडिया ने समाज को सही दिशा और गति प्रदान की है ओंर वर्तमान में भी कर रहा है। परंतु भविष्य में इसमें कुछ सुधार की अपेक्षा है, क्योंकि मीडिया का कार्य सिर्फ सूचना एवं मनोरंजन ही नहीं, बल्कि लोगों को हर क्षेत्र में जागरूक करते हुए स्वच्छ और नैतिक जनमत तैयार करना भी है। लोग क्या चाहते हैं, यह जरूरी हो सकता है, परंतु उसका समाज पर प्रभाव क्या पड़ेगा यह देखना मीडिया के लिए उससे भी ज्यादा जरूरी है। इसी खोए हुए लक्ष्य को प्राप्त करने की आवश्यता है। यही लक्ष्य लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ का सम्मान मीडिया को पुनः दिलावा सकता है और इस लक्ष्य की प्राप्ति मीडिया के आत्मनियमन द्वारा ही संभव है।

❑

संदर्भ

1. 1958 S.C. 641
2. IR 1962 S.C. 305
3. IR 1958 S.C. 578
4. भारतीय संविधान अनुच्छेद 19(1)(क)
5. भारतीय संविधान अनुच्छेद 19(2) युक्तियुक्त निर्बंधन
6. आलोक मेहता : पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा, पृ. 75
7. वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम से
8. डॉ. हरवंशसिंह दीक्षित : प्रेस विधि एवं अभिव्यक्ति स्वातेक्य
9. गंगाप्रसाद ठाकुर : भारत में प्रेस कानून और पत्रकारिता
10. डॉ. बसंतीलाल बावेल : पत्रकारिता एवं प्रेस विधि

संदर्भ सूची

1. भारत का संविधान : जय नारायण पांडेय
2. भारत का संविधान : दुर्गादास बसु
3. पत्रकारिता की लक्ष्मण रेखा : आलोक मेहता
4. प्रेस विधि एवं अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य : डॉ. हरवंश सिंह दीक्षित
5. मीडिया शोध : डॉ. मनोज दयाल
6. मीडिया शोध : डॉ. अर्जुन तिवारी